नवंबर, 2002

सात रुपये

आजकल

साहित्य एवं संस्कृति का मासिक



बाल साहित्य पर विशेष सामग्री



ISSN-0971-8478

स्थापित 1945

आजकल

बढ़ाते रहने की आवश्यकता है। हमारे कवियों को नई सदी की मांग के अनुरूप बाल काव्य रचना होगा। ***रोहिताश्व अस्थाना*** द्वारा बाल कविता की प्रगति का आकलन

साक्षात्कार

21. पुरस्कार लेखन का मूल्यांकन नहीं, शृंगार होता है !

अंग्रेजी के सुविख्यात बाल साहित्यकार रस्किन बांड से ***दिनेश चमोला*** की बातचीत

कहानी

18. मां की तलाश
युगल

28. खरगोश
गुलशन राय मोंगा

48. उदयपुर का लच्छा भील
मुज़फ्फर हुसैन

कविताएं

24. चार कविताएं
हेमंत देवलेकर 'आत्मीय'

25. दो कविताएं
सिद्धेश्वर

26. तुम बेटा नहीं, बेटी ही हो !
विनय कुमार विनायक

27. तीन कविताएं
भगवान दास 'ऐजाज़'

43. तीन बाल कविताएं
शिवांक

स्तंभ

2. पत्र

45. समीक्षा

47. प्रतिक्रिया

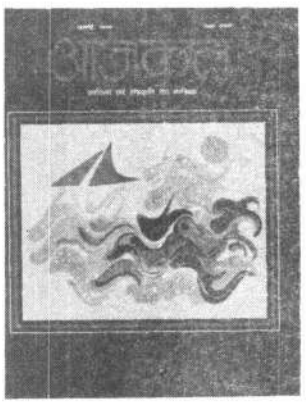
वर्ष : 59; अंक : 7; पूर्णांक : 697; नवंबर 2002, कार्तिक-अग्रहायण -1924

संपादक
बलदेव सिंह मदान
सहायक संपादक
योगेंद्र दत्त शर्मा
ललिता खुराना
आवरण : बाल कलाकारों की कलाकृतियां
आवरण सज्जा : ***अलका नैयर***
संपादकीय पत्र व्यवहार :
संपादक **आजकल** प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001, दूरभाष : 3387876, फैक्स : 3387876
E-Mail : indiaputb@nda.vsnl.net.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : **डी.एन. गांधी**
चंदे की दरें :
एक प्रति : 7 रुपये; वार्षिक : 70 रुपये;
दो वर्ष: 135 रुपये; तीन वर्ष:190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक से) एक वर्ष
पड़ोसी देश : 500 रुपये
शेष विश्व : 700 रुपये
चंदे संबंधी पूछताछ :
ए.के. दुग्गल
सहायक व्यापार व्यवस्थापक
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 दूरभाष : 6105590

हमारे विक्रय केंद्र
(यहां वार्षिक चंदा जमा कर सकते हैं।)
नई दिल्ली : बुक गैलरी, पटियाला हाउस; दूरभाष : 3387983
सुपर बाजार कनाट प्लेस, दूरभाष : 3313308
दिल्ली : बुक शाप, पुराना सचिवालय; दूरभाष : 3968906
लखनऊ : 27/6, राममोहन राय मार्ग; दूरभाष : 208004
कोलकाता: 8, एस्प्लेनेड ईस्ट; दूरभाष : 2488030
पटना : बिहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 653823
मुंबई : कापर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर; दूरभाष : 2610081
तिरुअनंतपुरम; गवर्नमेंट प्रेस के निकट; दूरभाष : 330650
हैदराबाद : ब्लाक-4, प्रथम तल, गृहकल्प कांप्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष : 236393
चेन्नई : राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष : 4917673
बंगलौर : एक विंग, केंद्रीय सदन, कोरमंगला दूरभाष : 5537244

टाइपसेट : ज्योति लेजर टाइपसेटिंग



प्रतिष्ठा दांव पर

● जुलाई अंक के प्रारंभ में ही इलाचंद्र जोशी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर संक्षिप्त मगर महत्वपूर्ण आलेख पढ़ा। दुख हुआ कि उनके जन्मशती वर्ष पर उन्हें पत्रिका में सीमित जगह मिली है जबकि इससे पूर्व बेनीपुरी के जन्मशती वर्ष में संग्रहणीय अंक मिला था।

विमर्श के अंतर्गत *आवां* का विवेचन अच्छा लगा। साक्षात्कार में चित्रा मुद्गल अहं से ग्रसित लगीं। उन्होंने जिस तरह राजेंद्र यादव, नामवर सिंह एवं अशोक वाजपेयी पर आक्षेप लगाए हैं, किसी जातिगत द्वेष की भावना ही प्रतीत होती है। अंत में अप्रत्यक्ष रूप में वह कहती हैं कि युवाओं को दरकिनार कर बूढ़े लेखकों को ही सम्मानित किया जाना चाहिए। कहना चाहूंगा कि ऐसी अहंवादिता और छद्म मानसिकता उनके लिए भी शोभनीय नहीं है।

कहानी 'हां' और 'कुकुर-कथा' मार्मिक व मर्मस्पर्शी हैं। किस्तों के फेर ने 'कुकुर-कथा' को बोझिल किया है जोकि अन्य बाजारू पत्रिका-सा प्रतीत होता है। सीताराम खोड़ावाल का आलेख- 'कब लगेंगे उनकी समाधियों पर मेले' चिंतनीय व संग्रहणीय है। कविताओं में रेणु जी वर्तमान को रेखांकित करने में सफल हुए हैं, तो व्यास जी अज्ञेय की झलकियां प्रस्तुत करने में। विज्ञानव्रत की ग़ज़लें संग्रहणीय हैं।

पत्रिका के अंत में जैन साहब और रोहिताश्व जी की प्रतिक्रिया पत्रिका की स्तरीयता पर कई प्रश्नों को जन्म देने वाली हैं। वहीं पटेल जी ने पत्र में लिखा है कि 'उक्त आलेख को पढ़कर *आजकल* के तमाम निर्धन पाठक अवश्य प्रभावित होकर लंदन को दूसरा स्वर्गलोक मान लेंगे और बुद्धिजीवी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।' यह शब्दशः सत्य ही है। अतएव जरूरत है कि इस तरह की दिग्भ्रमित करने वाली सामग्री न परोसी जाए, जो पत्रिका की प्रतिष्ठा धूमिल करे। आलेख की सत्यता की जांच संपादक महोदय को करनी चाहिए।

-जीतेंद्र राम, दरभंगा

किसे प्रामाणिक मानें

● चित्रा मुद्गल से बलराम द्वारा लिए गए साक्षात्कार को पढ़ने के पश्चात मेरे लिए इस पुस्तक का महत्व कई गुना बढ़ गया है।

निर्मला सिंह की कहानी 'हां' में बीना की हां सुनने के लिए पाठकों को बहुत कुछ झेलना पड़ा। वैसे कहानी अच्छी बन पड़ी थी। मेरी समझ से 'अर्थात्' जैसी लंबी कहानी से पत्रिका को परहेज करना चाहिए। 'सिरचन : दो गीत' में सिरचन तो था, किंतु वह फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी 'ठेस' का कथानायक सिरचन नहीं था। वैसे 'हंसुली' और 'शीतल पाटी' देखकर कुछ समय के लिए मुझे जरूर रेणु के सिरचन का भ्रम हुआ था, जो बाद में टूट गया। विज्ञानव्रत की ग़ज़लें लाजवाब थीं। घनश्याम अग्रवाल की कविता अच्छी लगी।

'लंदन की चकाचौंध' में भारतीयों के साथ लंदन में होने वाले भेदभाव के विषय में मार्च अंक में पढ़ा था। 'लेकिन तथ्य कुछ और कहानी कहते हैं।' यह सच है कि लेखक की प्रामाणिकता हर जगह जरूरी है। किंतु जब एक ही विषय पर सुधेश जी के लेख और महेंद्र जी के पत्र जैसा मतभेद उभरे तो एक आम पाठक किसे प्रामाणिक माने? ऐसे में पत्रिका के संपादक का हस्तक्षेप आवश्यक जान पड़ता है। नहीं तो आम पाठक अंत तक भटकाव की स्थिति में ही रहेगा।

-आशीष कुमार 'अंशु', बेतिया (बिहार)

समझ से परे

● आवरण का मनमोहक रूप देखकर मन आह्लादित हो उठा। यदि आप आवरण पर प्रस्तुत चित्र के चित्रकार का संक्षिप्त परिचय भी पत्रिका में दें, तो साहित्य और संस्कृति के साथ ही साथ कला के उत्थान में भी पत्रिका सहयोग दे सकेगी।

इलाचंद्र जोशी के कृतित्व और व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय कराता धनंजय चोपड़ा का लेख अच्छा लगा।

बलराम ने उपन्यास *आवां* की जितनी सटीक विवेचना है, उतनी ही कुशलता से उसकी लेखिका चित्रा मुद्गुल से बातचीत भी की है।

कहानियों में निर्मला सिंह की 'हां' ने काफी निराश किया। अपनी लचर कथावस्तु, घिसे-पिटे संवादों के कारण कहानी शायद ही किसी को पसंद आएगी। नीलिमा सिन्हा की 'अर्थात्' की पहली किस्त 'कुकुर-कथा' ने ही पढ़ने के पश्चात अगली किस्तों की प्रतीक्षा करने के लिए विवश कर दिया।

कविताएं ही इस अंक के खाली स्थान को भरती नजर आ रही हैं। रमानंद रेणु की सभी अनूदित कविताएं संदेशयुक्त और सार्थकता लिए हुए हैं। घनश्याम अग्रवाल की कविता 'गली के उस मोड़ पर' वर्तमान में जारी धार्मिक द्वेष की पिछली खिड़की खोलने का कार्य कर रही है। विज्ञानव्रत की सभी ग़ज़लें और राघवेंद्र तिवारी के गीत अच्छे लगे।

प्रतिक्रिया में महेंद्र राजा जैन और दुर्गादत्त पाठक ने जिस प्रकार 'लंदन की चकाचौंध' लेख की चकाचौंध का पर्दाफाश किया है, सराहनीय है। इससे यह पता चलता है कि आज का पाठक सचेत व समर्थ है। इस घटना को किसकी त्रुटि माना जाए, यह मेरी समझ से परे है। शायद लेखक ने यह यात्रा रात्रि के अंधकार में अर्द्धनिद्रा में की हो।

-ज्ञान प्रकाश पथिक, बलरामपुर

दीपक के नीचे का अंधेरा

● अंक में महेंद्र राजा जैन की सुधेश जी के लेख 'लंदन की चकाचौंध' पर जो प्रतिक्रिया छपी है, उसमें लेखक ने सुधेश जी के लंदन के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त किए बिना ही लिखने, मौलिकता तथा प्रामाणिकता का लेख में अभाव होने का आरोप लगाया है। मैं जैन जी का ध्यान उन्हीं की प्रतिक्रिया में 'औसत वेतन का अर्थ यह है कि इतना तो वहां सड़क पर झाड़ू लगाने वाले को भी मिल जाता है...' वाक्य की ओर आकृष्ट कराना चाहता हूं। आज भारत की औसत आय 2340 डालर प्रति व्यक्ति, प्रति वर्ष अर्थात 1,09,980 रुपये प्रति व्यक्ति (एक लाख नौ हजार नौ सौ अस्सी रुपये प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष) है। क्या जैन जी हमें यह बताएंगे कि भारत में सड़कों पर झाड़ू लगाने वाला व्यक्ति भी लगभग एक वर्ष में एक लाख रुपये कमा लेता है?

शायद जैन जी के अनुसार यह सही भी हो। हालांकि प्रति व्यक्ति आय किसी भी देश की सकल राष्ट्रीय आय में देश की जनसंख्या का भाग देने पर प्राप्त होती है। यही औसत वेतन के लिए भी सही है क्योंकि इसमें देश के एक झाड़ू लगाने वाले के वेतन के साथ-साथ देश के प्रमुख व्यक्तियों का वेतन भी शामिल है।

अत: दूसरे के लेख में मौलिकता का प्रश्न उठाने वाले अपने लेख की प्रामाणिकता पर भी ध्यान दें।

–ललित नारायण मिश्र, देवरिया

लेखक स्पष्टीकरण दे

● अंक की दोनों कहानियां उत्तम रहीं। भाव-प्रेषण में गहरी रहीं। *आजकल* के पिछले कुछ अंकों से बेहतर कहानियां प्रकाशित हो रही हैं, प्रसन्नता की बात है। आगे भी यह क्रम जारी रहेगा, इसकी कामना है।

चित्रा मुद्गल से की गई बातचीत पूरी ईमानदारीपूर्वक आई है। इसके लिए *बधाई के पात्र हैं* बलराम और स्वयं चित्रा जी।

प्रतिक्रिया में महेंद्र राजा जैन

आजकल ***का अब आप 2 व 3 वर्ष का चंदा भी एक साथ जमा कर सकते हैं***

मैं आपकी पत्रिका *---------- का ☐ एक वर्ष (रु. 70)

☐ दो वर्ष (रु. 135) ☐ तीन वर्ष (रु. 190) का ग्राहक बनना चाहता हूं।**

चंदे का रु. ---------- डी.डी./भारतीय पोस्टल आर्डर/

मनिआर्डर सं----------दिनांक----------संलग्न है।

हस्ताक्षर ----------

नाम :----------

पता : ----------

पिन : ☐☐☐☐☐☐

* पत्रिका का नाम

** कृपया जितने वर्ष का चंदा जमा करना चाहें उस पर निशान लगा दें। और यह फार्म भरकर : विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 के नाम भेजें। टेलीफोन : (011) 6105590

● दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं हैं : *बाल भारती, आजकल* (उर्दू), *कुरुक्षेत्र* (हिंदी व अंग्रेजी), *योजना* (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)। पत्रिकाओं की चंदे की दरें:

एक वर्ष : रु. 70.00, दो वर्ष : रु. 135.00, तीन वर्ष : रु. 190.00

● कृपया अपना चंदा डी.डी./ पोस्टल आर्डर/ मनिआर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग, के नाम बनाएं।

● पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

● किसी भी जानकारी के लिए लिखें:
विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066

●

की चिट्ठी अगर यही तथ्य के साथ है तो सुधेश जी अपना स्पष्टीकरण दें। वरना यही समझा जाएगा कि लेखक गलत-सलत जो भी लिखे, लोग उसको सही मानें। आखिर लेखक, पाठक को मूर्ख क्यों समझते हैं? इसी संदर्भ में दुर्गादत्त पाठक का पत्र भी इंगित करता है। लेख पाठक इसलिए पढ़ता है कि उससे उसकी जानकारी बढ़े जो सही हो न कि कोई गलत जानकारी, जो उसके मस्तिष्क में कचरे की तरह भरे।

-मनोज कुमार 'मनु', इलाहाबाद

कब लगेंगे मेले

● सतनामियों के स्वातंत्र्य बलिदान के लिए अपना सर्वस्व होम करने का इतिहास प्रसंग 'कब लगेंगे उनकी समाधियों पर मेले' पढ़ने का अवसर मिला। निश्चित ही स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व की भावना के लिए लड़ने वाले सतनामियों की तरह देश में कई सारे ऐसे प्रसंग हैं जो लोगों को मालूम ही नहीं हैं। आज से पहले मुझे भी इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी। धन्यवाद लेखक का, जो उन्होंने इस विषय पर सोचा और लिखा। लेख की समाप्ति पर लेखक ने यह लिखा है कि शहीद सतनामियों की रूह को किसी भूषण, श्याम नारायण पांडे या सुभद्राकुमारी चौहान का इंतजार है जो इनकी करुण गाथा का अपनी लेखनी द्वारा भावपूर्ण मूल्यांकन करे। मैं समझता हूं, वह स्वयं ऐसे लेखक हो सकते हैं। जब वह गद्य लेखन के माध्यम से भावनाएं विकसित करने में सफल हैं तो पद्य में क्यों नहीं रहेंगे? आवश्यकता एक बार प्रयास किए जाने की है। वह स्वयं इनके बारे में और सामग्री इकट्ठी करके पद्य लेखन का प्रयास करें।

-मयंक चतुर्वेदी, ग्वालियर (म.प्र.)

भूल सुधार

उक्त लेख में (पृष्ठ 38 पर) एक पंक्ति अशुद्ध छप गई है। शुद्ध रूप इस प्रकार है : 'बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम'।

त्रुटि के लिए हमें खेद है।

-संपादक

कुहासा दूर किया

● इतिहास प्रसंग में सीताराम खोड़ावाल की रचना 'कब लगेंगे उनकी समाधियों पर मेले!' ने भ्रांति के कुहासे को तो दूर किया ही, साथ ही काफी दुख भी दिया कि अपने फूहड़पन की वजह से प्रजातंत्र के लिए पहले ध्वजाधारी होने के गौरव से हम वंचित रह गए।

घनश्याम अग्रवाल की कविता 'गली के उस मोड़ पर' भटके हुए लोगों को सही राह दिखाती है, उनका हृदय परिवर्तन भी करती है। निर्मला सिंह की कहानी 'हां' की बीना जीवन के एक ऐसे मोड़ पर आ खड़ी होकर जीवन साथी यानी पीयूष के चुनाव में जिन आशंकाओं के आकाश में मंडराती है और फिर आत्मनिर्णय के जिस धरातल पर उतरती है, वह उसकी विवशता नहीं बल्कि सही निर्णय लेने का हर्षोल्लास है, जो एकपक्षीय नहीं द्विपक्षीय है।

'मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा के प्रवर्तक' में इलाचंद्र जोशी की जन्मशती पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर धनंजय चोपड़ा के सारगर्भित आकलन ने जोशी जी की याद को ताजा कर दिया।

सुधेश के यात्रा वृत्तांत पर प्रतिक्रियाएं लेखन की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करके नई जानकारियां देती हैं।

-राधेलाल 'नवचक्र', भागलपुर

उपलब्धि

● चित्रा मुद्गल हमारे दौर की एक सशक्त रचनाकार हैं। उनके साथ एक जानदार साक्षात्कार इस अंक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

रमानंद रेणु की कविताओं में व्यक्त चिंताएं संवेदनशील हैं, चिंतन के दरवाजे खोलती हैं लेकिन विज्ञानव्रत की ग़ज़लों में कुछ जल्दबाजी दिखाई देती है। ज्यादातर ग़ज़लें एक ही वज़न में और संभवत: एक ही बैठक में लिखी हुई लगती हैं। विज्ञानव्रत एक अच्छे ग़ज़ल शायर हैं। उन्हें ज्यादा सावधान रहना चाहिए।

लेखक की प्रमाणिकता के संदर्भ में इतना जरूर कहना चाहूंगा कि स्थापित शब्दशिल्पी भूल जाते हैं कि लोग केवल उनका नाम नहीं पढ़ते, उनकी रचनाओं को भी पढ़ते हैं और पढ़कर चुप रह जाना और सह जाना वर्तमान परिस्थितियों में नई पीढ़ी को अमान्य है। तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश करने वालों को दुरुस्त करना होता है। स्वनामधन्य लोगों को इतना तो सोचना चाहिए कि उनकी प्रतिष्ठा पर आंच न आए।

प्रकाशित सामग्री गुणात्मक दृष्टि से हमेशा की तरह अच्छी ही है। वैसे भी सरकारी पत्र-पत्रिकाओं में *आजकल* की साहित्यिक प्रतिबद्धता अपनी मिसाल आप है। आपने इस स्वर्णिम परंपरा को जारी रखा है।

-सत्यप्रकाश उप्पल, मोगा (पंजाब)

सोने पर सुहागा

● बलराम जी ने बड़ी ही निष्ठापूर्वक चित्रा मुद्गल जी की महत्वाकांक्षी रचना *आवां* को जांच-परखकर आम पाठकों के वास्ते एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। चित्रा मुद्गल के साक्षात्कार को छापकर सोने पे सुहागा ही रख दिया आपने। बलराम जी को हार्दिक बधाई।

महिला-लेखन को चित्रा जी ने एक अनोखी दशा-दिशा प्रदान की है।

नीलिमा सिन्हा की लंबी कहानी अर्थात की पहली किस्त 'कुकुर-कथा' भी मैंने बड़े चाव से पढ़ी। एक लावारिस श्वान-शिशु के बहाने उन्होंने मध्यवर्गीय समाज में उपजी घृणा, नफरत एवं असंवेदनशीलता को उजागर किया है। लेखिका ने साइबर युग में पलने वाली पीढ़ी की दशा को चित्रित किया है।

रमानंद रेणु की कविता आंदोलनकारी जोश की लहर से ओत-प्रोत होकर दिल को छूती है।

'एक छतनार पेड़ है हमारा देश' के जरिए कवि ने आशावादी भविष्य को दर्शाया है। 'गली के उस मोड़ पर' शीर्षक कविता में घनश्याम अग्रवाल ने दंगे-फसाद का हवाला बड़े ही गहरे यथार्थ में प्रस्तुत किया है।

-भूपेंद्र, लक्खीसराय (बिहार)

जोशी जी का कथन

● मनोवैज्ञानिक उपन्यास-धारा के प्रवर्तक इलाचंद्र जोशी की जन्मशती के अवसर पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर धनंजय चोपड़ा द्वारा डाला गया प्रकाश, उनके बारे में काफी जानकारी देता है। जोशी जी का यह कहना- 'हमारे साहित्यिकों को यह बात सदा ध्यान में रखनी होगी कि साहित्य साधना के समान कठोर साधना दूसरी कोई नहीं है। और ड्राइंग रूमों में वार्तालापों से युग की प्रगति के संबंध में दो-चार छिटपुट बातें सीखकर साहित्य क्षेत्र में कूद-फांद मचाने से कोई भी व्यक्ति सच्चा साहित्यिक नहीं बन सकता' बिल्कुल सही है। यह और बात है कि आज एयरकंडीशंड कमरों में बैठकर गरीबी-भुखमरी पर लिखने वालों की भी कमी नहीं है जो शीर्ष पर बैठ खुद को 'शुभचिंतक' दर्शाने की कोशिश करते हुए ताल ठोक रहे हैं।

निर्मला सिंह की कहानी 'हां' हृदयस्पर्शी है। प्रो. बीना अपने पांव पर खड़ी है, लेकिन कुंवारी होने के कारण काफी कुछ सुनती-सहती है। दहेज न देकर शादी करने के निर्णय पर वह अटल रहती है क्योंकि उसे खुद पर विश्वास होने के साथ-साथ पिता की गरीबी का, हैसियत का भी एहसास है। अंतत: वह एक तलाकशुदा पुरुष से भी शादी करने को तैयार हो जाती है, उसकी (पुरुष) स्पष्टवादिता से प्रभावित होकर। अंत सुखद है।

चित्रा मुद्गल से बलराम की बातचीत रुचिकर है। इससे चित्रा जी के बेबाक विचारों से भी अवगत होने का मौका मिला।

रामानंद रेणु की कविताएं, तथा विज्ञानव्रत की ग़ज़लें प्रभावशाली हैं।

-शंकरानंद, खगड़िया (बिहार)

बुझती लौ में प्रकाश

● अंक काफी दिलचस्प है। इलाचंद्र जोशी को नई पीढ़ी के लोग भूलते जा रहे थे। उनके व्यक्तित्व-कृतित्व को उचित तरीके से उजागर करके *आजकल* ने इतिहास की एक बुझती हुई लौ को फिर से प्रज्वलित कर दिया है।

चित्रा मुद्गल से बलराम की बातचीत चिंतनीय और उत्प्रेरक है।

विशेष अनुरोध यह है कि इक्कीसवीं सदी को देखते हुए कविताओं और कहानियों के चयन के लिए नए मापदंड का निर्धारण करें।

-सुशांत कुमार झा, खोजपुर, मधुबनी (बिहार)

धारदार ग़ज़लें

● विज्ञानव्रत की ग़ज़लें स्तरीय तथा धारदार लगीं। कम से कम मात्राओं में ग़ज़लें प्रस्तुत करना विज्ञानव्रत जी की खास विशेषता है। घनश्याम अग्रवाल की कविता 'गली के उस मोड़ पर' स्तरीय लगी। राजेश कुमार व्यास की कविताएं कोई खास प्रभाव नहीं छोड़तीं। पत्र स्तंभ के अंतर्गत कुछ खास पत्रों को पुरस्कृत करने की योजना बनाएं। पुस्तक समीक्षाएं पढ़कर पुस्तक मंगाने की ललक जगी। इस अंक की सभी कहानियां पसंद आईं। लघुकथाओं के लिए कुछ पृष्ठ बढ़ाएं। वस्तुत: *आजकल* की लोकप्रियता दिनानुदिन बढ़ रही है।

-जयप्रकाश मिश्र, शिवहर (बिहार)

गली के उस मोड़ पर

● निर्मला सिंह की 'हां!' सुंदर कहानी बन पड़ी है। नीलिमा सिन्हा की कहानी 'अर्थात्' के शेष हिस्से का इंतजार है।

कम जगह में ही स्व. इलाचंद्र जोशी पर अपेक्षित सामग्री मिली। सभी कविताएं सुंदर व समझ में आने वाली थीं, पर सबसे अच्छी कविता घनश्याम अग्रवाल की 'गली के उस मोड़ पर' है।

चित्रा मुद्गल और बलराम जी की बातचीत रोचक थी।

-देवांशु वत्स, सुपौल (बिहार)

बधाई

● मैं भी उसी बीमारी से ग्रसित हूं जिससे तमाम अनाम हिंदी पाठक परेशान हैं- अच्छी रचना/पुस्तक/पत्रिका को पत्र लिखने का मन बनाकर भी नहीं लिखने की। इस अंक ने मुझे मजबूर किया कि प्रतिक्रिया लिखूं, वह भी तत्काल। अच्छे अंक के लिए पहली बधाई- और भी अच्छे अंक आने की आशा में। इलाचंद्र जोशी पर सामग्री नए लोगों को दिशा-निर्देश देती रहेगी। *आवां* की आंच कैसे शुरू हुई, *आवां* कैसे पका, पता चला बलराम जी के 'स्त्री और दलित विमर्श की जमीन' से। सीताराम खोड़ावाल को अच्छे लेख के लिए व्यक्तिगत बधाई। अच्छे चयन के लिए संपादकीय टीम को मेरी ओर से बधाई/ साधुवाद।

--जितेंद्र जितांशु, कोलकाता

अच्छा अंक

● अंक अति विशिष्ट है। आवरण बहुत ही सुंदर है। चित्रा मुद्गल से बलराम की बातचीत, निर्मला सिंह की कहानी 'हां' हृदय पर छाई रही। कविता जो की पुस्तक चर्चा, जोशी जी की जन्मशती के अवसर पर धनंजय चोपड़ा का लेख रोचक जानकारी प्रस्तुत करता है।

-राजेंद्र सिंह कुंवर 'फरियादी', सिरसंड (उत्तरांचल)

आजकल

●
आज-कल करते-
निकल जाते महीने
यों इंतजार करते-
मुश्किल से दीदार होते
पत्र-पत्रिका की-
करते रहते प्रतीक्षा
पल-पल
अजब हालत है दिल की-
पढ़े बिना चैन न पड़ता
'आजकल'!

-कुशल करण, 'सांचीहर', जोधपुर (राजस्थान)

बाल कहानी

बच्चों की दुनिया का हर रंग है आज की बाल कहानियों में

आज की बाल कहानी सिर्फ कल्पना की दुनिया की फंतासी कथा नहीं है जो जीवन से भागकर बच्चे को किसी तिलिस्म में शरण लेने को मजबूर करे। इसके बजाय आज का बच्चा उन कहानियों को कहीं ज्यादा पसंद करता है जो उसकी दुनिया को कुछ इतने कल्पनापूर्ण तथा असरदार ढंग से उनके सामने रखें कि बच्चा चकित होकर उस रिवलंदड़ी में न केवल खुद-ब-खुद शामिल हो जाए बल्कि खुद को उसका एक हिस्सा महसूस करे। यही वजह है कि आज की बाल कहानियों में न सिर्फ बच्चों की सक्रिय उपस्थिति बढ़ी है, बल्कि यहां वे अपनी पूरी रचनात्मक शक्ति, ऊर्जा और रिवलंदड़ेपन के साथ मौजूद नजर आते हैं। बाल कहानी के आज के परिदृश्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर रहे हैं **प्रकाश मनु**

बाल कहानियों के बारे में जब भी सोचना शुरू करता हूं तो बचपन की सपनीली दुनिया में पहुंचे बगैर नहीं रह पाता। वह दुनिया जिसमें मां और नानी द्वारा सुनाई गई एक-से-एक खूबसूरत और अचरज भरी कहानियों का अकूत खजाना था। उन्हीं में 'अधकू की कहानी' भी थी। एक हाथ, एक पैर वाला दुबला-पतला सींकिया अधकू, जो अपने कद्दावर, बलशाली भाइयों से लगातार तिरस्कृत होता है। उसे बे-काम का समझकर मारने की कोशिशें भी होती हैं। तब एक मां है, जो उसे हर बार बचाती है। वही सींकिया अधकू बड़ा होता है तो इतना समझदार बनता है कि राजकारा में बंदी अपने भाइयों का 'मुक्तिदाता' साबित होता है। कहानी का अंत होते-होते अधकू राजदरबार में भरपूर सम्मान पाता है और अपने भाइयों को भी ढंग का काम-काज दिला देता है।

मां जब यह कहानी सुना रही होती थी तो लगता था, वह दुबला-पतला सींकिया अधकू मैं ही हूं। और फिर कहानी के आगे बढ़ने के साथ-साथ एक तेज झंझावात की तरह अधकू का दर्द मेरे भीतर बहने लगता था। आंखों के आगे भविष्य के सपने और उजली कामनाओं के चिराग जलने लगते थे।

बचपन में सुनी ऐसी ही एक और कहानी थी उस राजकुमार की, जिसे चेतावनी दी जाती है कि वह महल की छह कोठरियां देख सकता है, पर सातवीं कोठरी में जाने की उसे मनाही है। वह राजकुमार भी पगला है, धुनी है। वह मन ही मन तय करता है कि चाहे जो हो, वह सातवीं कोठरी भी देखेगा कि आखिर इसमें क्या है?...और फिर एकाएक कहानी में तेज गति, बल्कि एक भूचाल-सा आ जाता है। राजकुमार के सिर पर एक के बाद एक मुसीबतें खौफनाक बिजलियों की तरह टूटने लगती हैं!...इधर कहानी सुनने वाला नन्हा बालक– जो कि मैं हूं– लगभग सम्मोहन की हालत में है। छाती में धड़-धड़, धड़-धड़ शुरू हो जाती है। अजब-सा खौफ भरा मंजर! लेकिन बड़ा मजा आता है। ...कहानी भागती हुई आगे बढ़ती जा रही है और एक के बाद एक तिलिस्मी दरवाजे खुलते जाते हैं। राजकुमार बड़े से बड़े दुख उठाता है, लेकिन हारता नहीं है, उफ तक नहीं करता।...और अंत में वह विजयी भाव से सामने आता दिखाई पड़ता है। उसका माथा दमक रहा है...आंखों में चमक है!

मुझे याद है, बचपन में यह कहानी सुनते हुए लगता था, सातवीं कोठरी में जाने वाला वह अधपगला दुस्साहसी राजकुमार मैं हूं। बड़ा हुआ तो मैं भी उस सातवीं कोठरी में जाकर देखूंगा कि उसमें क्या कुछ रहस्य छिपा है। जो भी मुसीबतें आएंगी, झेलूंगा। लेकिन रुकूंगा नहीं, हारूंगा नहीं।

आज लगता है, मेरी कलम को बचपन में सुनी उन्हीं कहानियों का 'वरदान' मिला है। हृदय में करुणा, सहृदयता और परदुखकातरता शायद उन्हीं कहानियों से आई हो, जो जाने-अनजाने मुझे इंसानियत का गहरा पाठ पढ़ा रही थीं।...जाने क्या बात है कि उसके बाद सुनी-पढ़ी सैकड़ों कहानियां फीकी पड़ीं, मुरझा गईं, पर बचपन में सुनी कहानियों का असर आज तक कम नहीं हुआ।

यह है बाल कहानियों की अदम्य शक्ति या ताकत जिस पर अक्सर कम ही गौर किया जाता है। वरना आज के ज्यादातर बड़े लेखक बाल कहानियों से इस कदर उदासीन न होते। और न दोयम दर्जे के तमाम लेखकों द्वारा बाल कहानी के नाम पर रद्दी भाषा में कुछ भी लिख देने का सिलसिला चल पाता। कुछ लोग तो बाल कहानी को उपदेश देने का बहाना भर ही मानते हैं और अपनी हर कहानी पर भारी-भरकम उपदेशों की ऐसी गठरियां लाद देते हैं कि कहानी उसके नीचे कलपती-कराहती और दीर्घ निःश्वास लेती नजर आती है। इन कहानियों को पढ़ने वाले बच्चों की जो हालत होती होगी, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

फिर एक बात हमें यह भी नहीं भूलनी चाहिए कि 'कल की कहानी' से 'आज की कहानी' का मिजाज एकदम बदला हुआ है– बल्कि सच तो यह है कि वह लगातार बदलता गया है और बदल रहा है। आज की बाल कहानी पर आज

के समय और हालात का तथा निरंतर बदलती हुई दुनिया की सच्चाइयों का इतना सीधा असर पड़ा है कि उसे नजरअंदाज करना मुमकिन नहीं है। आज के बच्चों को तिलिस्म उतना नहीं भाता, जितना अपने आसपास की दुनिया की छोटी से छोटी हलचल। या कि अपनी नन्ही-मुन्नी दुनिया की नन्ही-नन्ही मुश्किलें, सुख-दुख, सपने, आकांक्षाएं, यहां तक कि शिकवे-शिकायतें भी। यह दीगर बात है कि यही एक 'अच्छे' और 'बुरे' कहानीकार की परख भी अच्छी तरह हो जाती है। एक बुरा कहानीकार किसी चीज को उपदेशात्मक ढांचे में, मुर्दा भाषा में कहेगा और झट से एक तीसरे दर्जे की फार्मूला कहानी लिख मारेगा, जिसका आदि और अंत एकदम तय है, जिसके चरित्र बेजान हैं और संवाद फीके, नीरस। लेकिन बढ़िया कहानीकार भाषा की जिंदादिली और किस्सागोई में ढालकर यही सब कहेगा तो उसमें जीवन का रस छलछला रहा होगा। और ये ऐसी कहानियां होंगी, जिन्हें एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद बच्चे छोड़ नहीं पाएंगे, बल्कि बार-बार उनकी ओर खिंचेंगे। इन्हें पढ़ते हुए उनकी कल्पनाशीलता और 'क्रिएटिव' ऊर्जा- दोनों का खुद-ब-खुद विकास होगा।

अलबत्ता अच्छी कहानी क्या होती है और बच्चों पर उसका असर कितना गहरा और रचनात्मक किस्म का होता है, इस पर खूब विस्तार से ढेरों बातें कही जा सकती हैं। पर मुझे लगता है कि इससे कहीं बेहतर है जो बढ़िया कहानियां मैंने गुजरे कुछ बरसों में पढ़ी हैं और जिनकी गूंजें-अनुगूंजें आज भी मैं लगातार अपने भीतर महसूस करता हूं, उनकी यहां चर्चा की जाए। क्योंकि कोई अच्छी कहानी शायद खुद-ब-खुद यह बता देती है कि वह अच्छी क्यों है या कि उसमें दूसरी कहानियों से अलग और असरदार चीज क्या है!

गुजरे कुछ बरसों में पढ़ी कहानियों में जिस कहानी की याद सबसे पहले आती है, वह वैजयंती टोणपे की कहानी है। दीवाली के माहौल पर लिखी गई एक बहुत सादा-सी कहानी। दीवाली आई तो अपने साथ बहुत-सी चहल-पहल लेकर आई, बहुत-सी उमंगें और सपनों के रंग। दीवाली की यह रौनक एक छोटे-से बच्चे के मन में भी हलचल मचा रही है। वह अपनी मां से पूछता है- ''मां, यदि मैं आज के दिन अपने दोस्तों को दावत पर बुला लूं, तो कैसा लगेगा!'' मां खुशी-खुशी दावत की तैयारी में लग जाती है।

मगर जब बालक के दोस्त दावत खाने के लिए आते हैं तो एक क्षण के लिए उसे झटका लगता है। वे झुग्गी-झोंपड़ियों के मैले कपड़ों वाले गरीब बच्चे थे। अगले ही क्षण मां के चेहरे पर मुस्कान आ जाती है और वह प्यार से उनका स्वागत करती है, प्यार से उन्हें खिलाती-पिलाती है। उस समय उन गरीब बच्चों के चेहरों पर जो दमकती हुई खुशी थी, उसने मानो दीपों के त्यौहार में ऐसे अद्भुत रंग भर दिए थे, जैसे पहले कभी नजर ही नहीं आए थे। एक सादा, बहुत सादा कहानी भी कैसी पुरअसर हो सकती है, इसे वैजयंती टोणपे की यह कहानी पढ़कर समझा जा सकता है।

ऐसे ही एक अलग-सी कहानी है मोहम्मद अरशद खान की 'किराए का मकान'। एक बहुत छोटी-सी कहानी। लगभग घटनाहीन। लेकिन जब से मैंने इसे पढ़ा है, इसका असर और गूंजें-अनुगूंजें लगातार बढ़ती ही गई हैं। हुआ यह कि एक किराए के मकान में पुराने किराएदार गए और उनकी जगह नए आ गए। इन नए किराएदारों में एक छोटा-सा बच्चा भी है, जिसका ध्यान पुराने किराएदारों की छूटी हुई छोटी-छोटी चीजों पर जाता है। तब उसे मालूम पड़ता है, इस मकान में उस जैसा ही एक छोटा-सा बच्चा भी रहता था। उसकी एक बहन थी। वे कैसे-कैसे मजेदार खेल खेलते थे, क्या-क्या उनके शौक थे, छूटी हुई चीजें मानो इस सबकी कहानी कह रही हैं। और अब इस बच्चे के मन में उन दो छोटे बच्चों के लिए, जो यह मकान छोड़कर जा चुके हैं, जैसा गहरा लगाव पैदा होता है, उसे कह पाना निश्चित रूप से एक मुश्किल काम था। लेकिन मोहम्मद अरशद खान ने बड़े कमाल के ढंग से एक छोटी-सी कहानी में वह सब कुछ इस ढंग से गूंथ दिया है कि यह कहानी भुलाए भूलती ही नहीं।

इसी से मिलती-जुलती कहानी है मोहम्मद साजिद खान की 'ट्रांसफर'। इसमें एक छोटी-सी प्यारी बच्ची निकी का बड़ा ही कोमल मन है, जिसकी पीड़ा शब्दों के पीछे से बार-बार उचकती-झांकती है। निकी की सहेली नेहा को घर छोड़कर जाना होता है, क्योंकि उसके पिता यानी राहुल अंकल का ट्रांसफर हो गया है। नेहा के जाने के बाद भी निकी उसे भूली नहीं और उसके साथ बीते क्षणों के साथ-साथ छोटी एक-एक चीज उसे याद आती रही। फिर एक दिन नेहा का पत्र आया, जिसमें उसका नया पता था। निकी ने झट नेहा को पत्र लिखा और उसका जवाब भी आया। पत्रों का सिलसिला चल पड़ा। लेकिन पढ़ाई की व्यस्तता के कारण पत्र-व्यवहार का यह सिलसिला बीच-बीच में धीमा भी पड़ जाता। कुछ अंतराल के बाद निकी ने एक-एक कर चार पत्र डाले, लेकिन एक का भी जवाब नहीं आया। हां, उस मकान में रहने वाले एक अंकल का छोटा-सा पत्र उसे मिला, जिसमें लिखा था कि अब यहां नेहा नाम की कोई लड़की नहीं रहती। निकी समझ गई कि नेहा के पापा का फिर कहीं और ट्रांसफर हो गया है। अब फिर कभी मिलना हो न हो, सोचते ही निकी की आंखों की कोरों से दो बूंद आंसू ढुलक पड़े।...

एक मामूली चरित्र पर लिखी गई ऐसी ही अद्भुत कहानी है- देवेंद्र कुमार की 'रिक्शा डाक्टर'। यह एक मामूली रिक्शा चालक रामदास की कहानी है जो मरीजों को, रात हो या दिन, डा. राय के क्लीनिक पर पहुंचाता है और इसमें उसे अजानी खुशी मिलती है। खराब से खराब मौसम में भी वह अपना काम करने से हिचकता नहीं था। और धीरे-धीरे हालत यह हुई कि लोग रामदास रिक्शा वाले का नाम ही भूल गए और उसका नया नाम पड़ गया 'रिक्शा डाक्टर'। इसी नाम से लोग उसे जानते और पुकारते थे। फिर एक दिन यही रिक्शा डाक्टर बीमार पड़ा तो डा. राय कैसे उसका घर तलाशते हुए उसके पास पहुंचे और उसे प्यार से अपने साथ क्लीनिक ले गए। कहानी के अंत में इसका वर्णन मन पर बहुत गहरा असर छोड़ता है।

एक और यादगार कहानी है ओमप्रकाश कश्यप की 'नन्ही का बटुआ'। यह नन्ही कितनी समझदार है, कैसे एक-एक पैसा जोड़कर बटुए में रखती है और कैसे सावधानी से अपने बटुए की संभाल करती है, इसका वर्णन मैं करने नहीं जा रहा। कहानी पढ़कर ही इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है। लेकिन इसी नन्ही को एक दिन पता चलता है कि मित्ती- जो कि एक नौकरानी की बेटी है, सिर्फ इसलिए परीक्षा में नहीं बैठ पाएगी, क्योंकि उसके पास फीस देने के लिए पैसे नहीं है। यह पता चलते ही नन्ही के भीतर जैसी हलचल मचती है और एकाएक मानो वह बहुत बड़ी होकर अपना बटुआ लेकर मित्ती के स्कूल में उसकी फीस चुकाने पहुंच जाती है, इसका वर्णन ओमप्रकाश कश्यप ने बहुत अच्छे और प्रभावशाली ढंग से किया है। बाल कहानी में बच्चे के मन को टटोलने की जैसी कोशिश इस कहानी में है, वैसी कम ही नजर आती है।

बच्चे के मन को पढ़ने की ऐसी ही कुछ उम्दा कोशिशें मिसि विप्ट की 'बब्बू जी की तीर्थयात्रा', मनोहर वर्मा की 'शक्कर आंदोलन', उषा रानी की 'चीं-चीं चूं-चूं', क्षमा शर्मा की 'पेड़ पर स्कूल', उषा यादव की 'डायरी', मेधाविनी मोहन की 'हंसती कली' तथा मुकेश नौटियाल की 'स्कूल में अन्ना' जैसी कहानियों में नजर आती है। ये कहानियां आश्चर्यजनक ढंग से एक-दूसरे से अलग हैं। लेकिन अपने जुदा तरीकों से वे बच्चे के मन को टोहने-टटोलने में कामयाब होती हैं। इसी

से समझा जा सकता है कि अब बाल कहानियों में 'टाइप्ड' चरित्रों और निश्चित अंत वाले बने-बनाए कथानकों का जमाना चला गया। जब तक हर कहानी अपने बिल्कुल अलग अंदाज में बच्चे तक नहीं पहुंचती, तो उसे बाल कहानी या कोई 'क्रिएटिव' रचना कहना मुश्किल है। मगर इतना तय है कि कहानियां याद वही रहती हैं जिनमें चरित्रों और कथानक का अपना अलग गठन ही नहीं, कथा भाषा का भी अपना एक अलग रंग और अंदाज होता है।

ये कहानियां सिर्फ बानगी के तौर पर पेश की गई हैं। यह बताने के लिए कि आज की कहानी क्या है या उसका बदला हुआ मिजाज कैसा है। निस्संदेह आज की बाल कहानियां इस यकीन के साथ लिखी जा रही हैं कि आज के बच्चे न सिर्फ ज्यादा 'सयाने' हैं बल्कि वे संवेदनशील भी अधिक हैं और वे कहानी सिर्फ सुनने के लिए ही नहीं सुनते, बल्कि कुछ कर गुजरना भी चाहते हैं। चाहे वे एक छोटी-सी थाप ही दे पाएं, लेकिन सच्चाई और अच्छाई के पक्ष में वे अपनी छोटी-सी भूमिका निभाने में हिचकते नहीं हैं। इस लिहाज से कहानी उनके लिए सिर्फ 'रस' या मनोरंजन का खजाना ही नहीं, बल्कि जीवन का निर्माण करने वाली किसी जिंदा शख्सियत या उत्फुल्ल प्रेरणा की तरह भी है।

दूसरी खास बात यह कि आज की बाल कहानी जीवन के एक छोटे हिस्से नहीं, बल्कि बालक के संपूर्ण जीवन को अपने समूचेपन के साथ चाहने की जिद पर आ गई लगती है। लिहाजा आज की बाल कहानी सिर्फ कल्पना की दुनिया की फंतासी कथा नहीं है जो जीवन से भागकर बच्चे को किसी तिलिस्म में शरण लेने को मजबूर करे। इसके बजाय आज का बच्चा उन कहानियों को कहीं ज्यादा पसंद करता है जो उस की दुनिया को कुछ इतने कल्पनापूर्ण तथा असरदार ढंग से उनके सामने रखें कि बच्चा चकित होकर उस खिलंदड़ी में न केवल खुद-ब-खुद शामिल हो जाए बल्कि खुद को उसका एक हिस्सा महसूस करे। यही वजह है कि आज की बाल कहानियों में न सिर्फ बच्चों की सक्रिय उपस्थिति बढ़ी है, बल्कि यहां वे अपनी पूरी रचनात्मक शक्ति, ऊर्जा और खिलंदड़ेपन के साथ मौजूद नजर आते हैं। जैसे इन बाल कहानियों से उन्हें जो शक्ति और रचनात्मक प्रेरणा मिलेगी, उससे वे अपनी पढ़ाई, खेलकूद और दूसरे तमाम कामों को कहीं अधिक बेहतर ढंग से कर पाएंगे।

आज की बाल कहानियों में तीसरी बड़ी खासियत दुखी और कमजोर लोगों के साथ कहानीकार ही नहीं, बल्कि बच्चे का भी सच्चा प्यार और गहरी हमदर्दी का होना है। इन बाल कहानियों में कमजोर और गरीब लोगों के लिए बच्चे का यह प्यार या हमदर्दी कोरा हवाई या दिखावटी नहीं है, बल्कि बच्चे उस दर्द को महसूस करके अपने आप को बदलने और कुछ कर दिखाने के लिए विकल होते हैं। आज की बाल कहानियों में ऐसे उदाहरण कदम-कदम पर नजर आते हैं और यह, मैं समझता हूं, एक बड़ी चीज है। क्योंकि आज के बच्चे के नजरिए में जो बदलाव आया है, उससे कल की दुनिया बदल जाने वाली है।

इस तरह की कहानियों में ओमप्रकाश कश्यप की बेहद संवेदनशील कहानी 'नन्ही का बटुआ' का हम जिक्र कर चुके हैं। गोपीचंद श्रीनागर की 'पानी वाली लड़की', सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की 'बबीता', और देवेंद्र कुमार की 'ईमानदार रोशनी' जैसी कहानियां इसी संवेदना को अपने-अपने ढंग से विस्तार देती हैं। गोपीचंद श्रीनागर की 'पानी वाली लड़की' एक गरीब लड़की है जिसने फटा-पुराना फ्राक पहना हुआ है और वह पानी बेचकर दो पैसे कमा लेने के लिए घर से निकलती है। पूछने पर पता चला, ट्रेन में लोटा भरकर स्वच्छ पानी बेचने वाली इस लड़की का नाम मीना है और फिर उसकी कहानी भी पता चली कि वह यात्रियों को जो मीठा पानी पिलाकर पैसे इकट्ठे करती है, ये पैसे उसके पढ़ने के काम आएंगे। यह लड़की पानी जरूर बेचती है, लेकिन बेईमानी से पैसे कमाने में उसका यकीन नहीं है, इसलिए जैसे ही ट्रेन रेंगती है, वह बाकी पैसे लौटाती हुई सुरीली आवाज में कहती है– "बाबू जी, यह लीजिए अपने पचास पैसे।" और तब उन यात्रियों के चेहरे उतर जाते हैं जो उसे बेईमान कहकर मजाक उड़ा रहे थे।

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की 'बबीता' भी ऐसी ही एक गरीब लड़की की कहानी है जो दूसरों के घर काम करके भी हर हाल में पढ़ लेना चाहती है।

देवेंद्र कुमार की कहानी 'ईमानदार रोशनी' एक सनकी-से बाबा रंगी बाबा की कहानी है जो खाली मोमबत्तियां बेचते हैं। जब कभी रात को बिजली चली जाती है, तो वह झट छोटी-सी चौकी दरवाजे के पास रख लेते हैं और मोमबत्तियां बेचना शुरू कर देते हैं। लेकिन रंगी बाबा मोमबत्तियां बेचते क्यों हैं? जब यह राज समझ में आता है, तब उनके आगे पाठकों का सिर खुद-ब-खुद झुक जाता है। क्योंकि तब समझ में आता है कि रंगी बाबा उन लोगों में से हैं जो घुप्प अंधेरे में भी रोशनी की उजास को खत्म नहीं होने देना चाहते, भले ही उन्हें इसके लिए जीवन भर क्यों न खपना पड़े।

जगजीत सिंह की खूबसूरत कहानी 'नन्ही शिक्षिका' की नायिका एक नन्ही बच्ची है जो अड़ोस-पड़ोस के धोबियों को पढ़ाना शुरू करती है और इस काम में उसे इतना आनंद आता है कि अपनी अद्भुत लगन के कारण सब ओर इस भली-भली-सी नन्ही शिक्षिका की कीर्ति फैल जाती है।

इधर की कहानियां निस्संदेह आदर्श की बात करती हैं पर ये आदर्श हवाई आदर्श नहीं है और जीवन के रोजमर्रा के व्यवहार और सुख-दुख से उनका गहरा रिश्ता है। इसीलिए दामोदर अग्रवाल की कहानी के 'मास्टर जी' आदर्शवादी होकर भी हमें इतने प्यारे और अपने-से लगते हैं। उनका अभिमानी छात्र भले ही साधारण वस्त्रों के कारण उनका मजाक उड़ाए, पर जब वह अपने पिता को आदर से मास्टर जी के आगे झुकते देखता है और जब यह राज उसके आगे खुलता है कि मास्टर जी ने बहुत-से विद्यार्थियों की धन से मदद करके उन्हें पढ़ाया और जीवन में आगे बढ़ने में मदद की है, तो इस गर्वीले छात्र का अभिमान खुद-ब-खुद चूर-चूर हो जाता है।...यानी आज की कहानियों के आदर्शवाद में यथार्थ जीवन की चमक मौजूद है।

एक दौर था जबकि हिंदी में बड़े से बड़े लेखकों ने बच्चों के लिए बेहतरीन कहानियां लिखीं। कृश्न चंदर, इस्मत चुगताई, भीष्म साहनी, मन्मथनाथ गुप्त, रघुपति सहाय 'फिराक', मैथिलीशरण गुप्त, श्यामू संन्यासी, निर्मल वर्मा, शैलेश मटियानी, नागार्जुन, कमलेश्वर, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, सावित्री देवी वर्मा, दिलीप कौर टिवाणा, अभिमन्यु अनत, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', राजेंद्र अवस्थी, गोविंद मिश्र, शशिप्रभा शास्त्री, शकुंतला सिरोठिया और यहां तक कि पूर्व राष्ट्रपति तथा शिक्षाशास्त्री डा. ज़ाकिर हुसैन की लिखी ऐसी खूबसूरत कहानियां भी पढ़ने को मिलती हैं जिनमें बच्चे का मन और इच्छा-संसार शामिल है और बच्चे बिना पूरा पढ़े उन्हें छोड़ नहीं पाते।

इस लिहाज से ज़ाकिर हुसैन की 'अब्बू खां की बकरी' तो पहाड़ के परिवेश पर लिखी गई लाजवाब कहानी है, जो बच्चों के साथ बड़ों को भी मोह लेती है। यह पहाड़ पर रहने वाले एक बहुत प्यारे और खूबसूरत इंसान अब्बू खां की कहानी है जिन्हें बकरियां पालने का शौक है। वह कितने प्यार से बकरियों को पालते थे और उनका इतना ख्याल रखते थे कि क्या कहना! मगर इसके बाद भी अब्बू खां की बकरियां रस्सी तुड़ाकर पहाड़ के ऊंचे शिखर पर चली जाती थीं। वहां एक भेड़िया रहता था जो उन्हें खा जाता था। अब्बू खां इससे परेशान थे। वह बकरियों

को और कसकर बांधते और ज्यादा ख्याल रखते, मगर बकरियां थीं कि उन्हें पहाड़ पर जाए बगैर चैन न पड़ता। वहां वे पूरी आजादी के साथ सांस लेती थीं, भले ही भेड़िया उन्हें क्यों न खा जाए। ऐसे ही अब्बू खां की एक बहुत प्यारी खूबसूरत बकरी थी चांदनी, जिस पर वह बहुत प्यार लुटाते थे और उन्हें लगता था, यह बकरी उन्हें कभी छोड़कर नहीं जाएगी। मगर चांदनी भी उसी तरह रस्सी तुड़ाकर पहाड़ की चोटी पर गई। वहां उसने पूरी आजादी के साथ सांस ली और भेड़िए का शिकार हो गई। उसकी सफेद काया रक्तरंजित होकर पहाड़ के शिखर पर गिर पड़ी और भेड़िया उसे खा गया।

लेकिन कहानी का असली मर्मांतक बिंदु यह है कि मरने से पहले अपने दो सींगों के बल पर उस नाजुक-सी बकरी ने रात भर उस दुष्ट भेड़िए का मुकाबला किया और उसे बार-बार पछाड़ा। सुबह जब मस्जिद से अजान की आवाज आई, चांदनी ने मन में कहा- "अल्लाह, तेरा शुक्र है। मैंने अपने बस भर मुकाबला किया, अब तेरी मर्जी।" यों उस खूबसूरत बकरी चांदनी की साहस कथा खत्म हो गई। मगर पेड़ पर बैठी एक बूढ़ी-सी चिड़िया इस बात को जरूर जानती है कि चांदनी खत्म जरूर हो गई, मगर आखिरकार तो भेड़िया नहीं, चांदनी ही जीती।

श्यामू संन्यासी की 'खरहा भाई और भेड़िया दादा' भी खासी रोमांचक कथा है। हर बार भेड़िया खरहा के बच्चों पर घात लगाकर हमला करता है और खा-पीकर डकार लेता है। खरहा भाई-भौजाई रोते-धोते हैं और उनका रोना-कलपना देख, पेड़-पौधों तक के आंसू आ जाते हैं, आसमान की छाती फटने लगती है। मगर बार-बार यह कहानी दोहराई जाती है तो खरहा भाई-भौजाई के आंसू आखिर सूख गए और फिर उन्हें लगा कि कुछ तो रास्ता निकालना चाहिए। अंततः वे कारीगरों को बुलाकर शीशम के तख्तों से एक पक्का मकान बनवाते हैं और फिर भेड़िया दादा और खरहा भाई की कहानी एकाएक उलट जाती है। भेड़िया दादा संदूक में बंद हुए और आखिर 'परमधाम' पहुंच गए। कहानी के अंत में खरहा भाई-भौजाई और उनके बाल-बच्चों की खुशी का बड़ा प्यारा-सा चित्र है।

कृश्न चंदर की कहानी 'गंडक का भूत' यों तो परंपरागत परी कथाओं जैसी है, लेकिन लिखने का अंदाज और भाषा जिंदादिली से ऐसी भरपूर है कि समझ में आता है कि एक बड़े कहानीकार की कलम का स्पर्श कहानी को क्या से क्या बना देता है। 'गंडक का भूत' में राजा उदास है क्योंकि उसके खजाने पर एक भूत ने कब्जा कर लिया है और इस भूत का मुकाबला कोई नहीं कर पाता। मजे की बात यह है कि इस जबर्दस्त ताकतवर भूत को एक छोटा, बहुत छोटा बच्चा ही काबू करता है और उससे माफी मंगवाता है।

कृष्ण बलदेव वैद की 'जादू का चोगा' और भीष्म साहनी की 'अनोखी हड्डी' भी राजाओं के परिवेश पर लिखी गई कहानियां हैं। मगर उन्हें इस बात के उदाहरण के रूप में देखा जाना चाहिए कि किसी राजा की कहानी में भी आज के जीवन का सत्य कितने पुरजोर ढंग से आ सकता है।

खास बात यह है कि इन बड़े लेखकों की लिखी हुई कहानियों में जीवन का सुख-दुख और करुणा सहज ही समा गई लगती है। शैलेश मटियानी की 'रुनझुना दीदी रुनझुना' में छोटे भाई का दर्द कहानी का अंत आते-आते अगर उसकी अमीर और क्रूर हृदय वाली बहन की संपन्नता की खिल्ली उड़ाता है, तो निर्मल वर्मा की कहानी 'बाज और सांप' में आकाश में उड़ने वाला साहसी बाज मरकर भी डरे हुए घर-घुसरे सांप से मानो जीत जाता है। इस्मत चुगताई की बच्चों के लिए लिखी गई अलमस्त कहानी 'कामचोर' इस लिहाज से इन सब कहानियों से अलग है कि यहां बच्चे अपने पूरे नटखट अंदाज, शरारतीपन और क्रिएटिव ऊर्जा के साथ मौजूद हैं।

मैथिलीशरण गुप्त की 'जगतदेव' सावित्री देवी वर्मा की 'बर्फ का दूल्हा', मन्मथनाथ गुप्त की 'जैसी करनी वैसी भरनी', रघुपति सहाय 'फिराक' की 'बोतल का भूत', अभिमन्यु अनत की 'मायापुर की अगमजानी', दिलीप कौर टिवाणा की 'सेमल' भी बच्चों के लिए लिखी गई दिलचस्प कहानियां हैं। यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की 'टिड्डी पुराण', गोविंद मिश्र की 'कवि के घर में चोर' और शकुंतला सिरोठिया की गुलमोहर भी बच्चों के लिए लिखी गई यादगार कहानियां हैं।

वरिष्ठ कथाकारों में देवेंद्र सत्यार्थी और विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियों की अलग ही धज है। इनमें कथा-कौशल के साथ-साथ भाषा का जादुई सम्मोहन भी बांधता है।

देवेंद्र सत्यार्थी की 'अदारंग सदारंग', 'मौसी पपीते वाली', 'चिड़िया की आंख' और 'बस एक फूल' इस लिहाज से लाजवाब कहानियां हैं। खासकर 'अदारंग सदारंग' नाम के दो बड़े कद और बड़े दिल वाले खासे लहीम-शहीम भाई राजा के दरबार में जाकर जादू जैसा जो दृश्य उपस्थित करते हैं, उसे भूल पाना नामुमकिन है। इसी तरह 'मौसी पपीते वाली' बड़ी भावनात्मक कहानी है और अपने मीठे सम्मोहक प्रभाव तथा सच्ची खुरदरी आत्मीयता के लिहाज से यह कहानी कुछ-कुछ रवींद्रनाथ ठाकुर की 'काबुली वाला' की याद दिलाती है।

विष्णु प्रभाकर की 'पहाड़ चढ़े गजनंदन लाल', 'दक्खन गए गजनंदन लाल', 'कहीं कुछ नहीं बदला', 'सबसे सुंदर लड़की', 'धन्य है आपकी परख' भी सुंदर कहानियां हैं जिनमें 'पहाड़ चढ़े गजनंदन लाल' तो कहानी की भाषा और गजनंदन लाल की जिंदादिली के कारण कभी भुलाई नहीं जा सकती।

हिंदी में पशु-पक्षियों को लेकर लिखी गई कहानियों के बड़े स्पष्ट ढांचे बन चुके हैं। और इस तरह की ज्यादातर कहानियां सांचों में ढली कहानियां हैं। एक सांचा तो *पंचतंत्र* में ढली कहानियों का ही है, जिन्हें निर्लज्जता से ज्यों का त्यों अपने नाम से छपवाने में बहुत-से तथाकथित बड़े कहानीकारों को भी झिझक नहीं होती। फिर पशु-पक्षियों का बेतुके ढंग से मानवीकरण करके उन पर बेतुके करतब लाद देने वाली हड़बड़िया कहानियों का भी एक अलग सांचा बन गया है। इन कहानियों में हल्का-सा मजा भले ही हो, लेकिन ये बच्चे के अनंत संसार में उतरकर उन्हें गहराई से छू नहीं पातीं।

तो भी हिंदी में ऐसी बाल कहानियों की कमी नहीं है जो नायक के रूप में पशु-पक्षियों को लेकर उन्हें सचमुच बालक के मन और कल्पना की मनोरम दुनिया से जोड़ देती हैं। देवेंद्र कुमार, अमर गोस्वामी, हरिकृष्ण देवसरे, शोभनाथ लाल, क्षमा शर्मा, अजामिल आदि कहानीकारों की पशु-पक्षियों के इर्द-गिर्द घूमती कुछ ऐसी दिलचस्प कहानियां पढ़ने को मिलती हैं जो मानो यह प्रकट कर देती हैं कि इस दिशा में काम करने की अभी बहुत गुंजाइश है।

देवेंद्र कुमार की 'चिड़िया का सच' और 'कौन जाने' कहानियों में चिड़िया का होना हमें मनुष्य से कहीं ज्यादा बड़े सच के होने जैसा लगता है। इसलिए कि 'चिड़िया का सच' में खुशामद पसंद राजा को साधारण जनता के दुख-दर्द की कथा कोई और नहीं, महज एक नन्ही चिड़िया ही सुना पाती है। कहानी का अंत दुख भरा है, क्योंकि सच्चाई कहने के बदले चिड़िया की जान भी जा सकती थी। लेकिन चिड़िया उदास फिर भी नहीं है, क्योंकि जितनी उसकी सामर्थ्य थी, उतनी कोशिश करके उसने एक बड़ा और असुविधाजनक सच राजा तक पहुंचाया तो!

क्षमा शर्मा की 'तितली की खुशी' कहानी में एक नन्ही-सी तितली की नन्ही-सी खुशी बस इतनी है कि उसने एक रोते हुए बच्चे को थोड़ी रंग भरी खुशियों की उड़ान देकर चुप करा दिया। 'पप्पू चला ढूंढने शेर' भी क्षमा शर्मा की बड़ी

बूबसूरत कहानी है जिसमें शेर की कहानी पढ़ते-पढ़ते पप्पू एकाएक जंगल में ना पहुंचता है। अब पप्पू जंगल में शेर ढूंढ रहा है और वहां शेर तो नहीं मिलता, मगर एक के बाद एक ऐसे मंजर नजर आते हैं, जो बच्चे के मन को मोह लेते हैं।

अमर गोस्वामी की 'शेरसिंह का चश्मा', 'खुशबू की ताकत' जैसी कहानियां भी शेर, हाथी वगैरह को लेकर लिखी गई बड़ी दिलचस्प कहानियां हैं। उनकी कहानी 'नन्ही दोस्त' में एक नन्हे बालक मनोज और गौरैया की दोस्ती है। यह दोस्ती इतनी गहरी और सच्ची है कि मनोज जब बीमार पड़ता है, तो गौरैया भी उदास हो जाती है। फिर जब वह अच्छा हो जाता है तो गौरैया अपनी चोंच में एक नन्हा-सा रंग-बिरंगा फूल दबाए लौटती है और उसे मनोज की गोद में गिरा देती है। अपनी चूं-चूं की बोली में मानो वह गा रही है- 'तुम जिओ हजारों साल!'

रामगोपाल वर्मा के वृहत संग्रह *एक सौ एक बाल कहानियां* में भी पशु-पक्षियों को लेकर लिखी गई कई नन्ही-मुन्नी कहानियां हैं। इनमें 'तितली और फूल' में तितली और फूल की दोस्ती बहुत भली-भली-सी है। तितली फूल से रस लेती है और उड़ जाती है। लेकिन वही फूल जब मुरझाने लगा तो तितली को देखकर रो पड़ा। बोला- 'तितली बहन, मैं मर रहा हूं।' सुनकर तितली उदास हो गई। सोचने लगी, भले ही जीवन छोटा हो, पर फूल जैसा सुंदर होना चाहिए। रामगोपाल वर्मा की 'कुट-कुट' एक चूहे को लेकर लिखी गई नन्ही मजेदार कहानी है। लेकिन उनकी इससे भी दिलचस्प कहानियां वे हैं, जिनमें 'चूहे सिंह' के चुहिया रानी के नाम लिखे गए अलग-अलग पत्र हैं और वे पत्र चूहे सिंह और चुहिया रानी के दांपत्य के सचमुच बड़े मनोहर चित्र आंख के आगे उपस्थित कर देते हैं।

प्रसिद्ध कथाकार मन्मथनाथ गुप्त की कहानी 'ज्ञानी चूहा' भी खासी चर्चित हुई है।

अजामिल की 'एक थी गिल्लू', गिल्लू मौसी की कहानी है। पेड़ पर चढ़कर चूहे और तोताराम को सड़े-सड़े फल देने वाली गिलहरी- गिल्लू मौसी की कहानी। लेकिन ऐसी गिल्लू मौसी को भी एक दिन अक्ल आ ही गई। और जब अक्ल आई तो वह मन की सारी कड़वाहट भूल गई।

शोभनाथ लाल की 'कछुआ और पाजी खरगोश' भी कुछ लीक से हटकर अलग कहानी है। राजा को खुजली है और उसे राजवैद्य ने तालाब के साफ पानी में नहाने की सलाह दी है। मगर सारे दरबानों की आंख में धूल झोंककर न जाने कौन उस तालाब का पानी गंदला कर जाता है। तब कछुए ने उसे पकड़ने की जिम्मेदारी उठाई और पीठ पर तारकोल चिपकाकर जैसे नाटकीय ढंग से उसने पाजी खरगोश को पकड़ा, उससे कहानी खुद-ब-खुद एक मजेदार शक्ल लेती चली गई।

लेकिन हरिकृष्ण देवसरे ने 'खरबूजे ने बदला रंग' और 'तोता-मैना का नया संवाद' में पशु-पक्षियों को लेकर लिखी गई कहानियों का एक अलग विन्यास ही नहीं दिया, बल्कि एक अलग राह भी खोज निकाली है। इनमें 'खरबूजे ने बदला रंग' की खासियत यह है कि इस पुस्तक की कथाओं में हरिकृष्ण देवसरे ने *पंचतंत्र* के कथाशिल्प को एक आधुनिक कलेवर में पेश किया है। इनमें कई कहानियां ऐसी हैं जिनकी पृष्ठभूमि में *पंचतंत्र* की कोई न कोई कथा है। बल्कि *पंचतंत्र* की कथा जहां खत्म होती है, 'खरबूजे ने बदला रंग' की बहुतेरी कथाएं वहां से शुरू होती हैं। हरिकृष्ण देवसरे पुराने चरित्रों को आधुनिक संदर्भों की रोशनी में ऐसा रूप देते चलते हैं कि आज वे कहीं ज्यादा हमें अपने आसपास के लगते हैं।

नागार्जुन, आनंद कुमार, प्रेमलता वात्स्यायन और उषा रानी को भी पशु-पक्षियों को नायक बनाकर लिखी गई कहानियां पढ़ने को मिलती हैं। बाबा नागार्जुन की *कथा मंजरी* के दो खंडों में *पंचतंत्र* वाले शिल्प को अपनाकर पशु-पक्षियों की बड़ी रोचक और जानदार कहानियां बुनी गई हैं, जो आज के जीवन से भी जुड़ती हैं और खेल-खेल में नए पाठ सिखाती चलती हैं। आनंद कुमार की 'कपटी बिलाव' चतुर सियारिन' जैसी कहानियां खासी मशहूर हुई हैं। प्रेमलता वात्स्यायन की 'काना गीदड़' कहानी भी खासी मजेदार है। पशु-पक्षियों को लेकर लिखी गई कहानियों में उषा रानी की 'चूं-चूं चीं-चीं' जैसी कहानियां इसलिए एकदम अलग नजर आती हैं क्योंकि यहां बच्चा कहानी के एकदम केंद्र में है और बच्चे तथा पशु-पक्षियों की नैसर्गिक दोस्ती खुद-ब-खुद कहानी को शक्ल लेती, आगे बढ़ती है।

और अब जरा हास्य प्रधान बाल कहानियों की चर्चा की जाए, जो निस्संदेह अलग से चर्चा की हकदार भी हैं।

हिंदी में हास्य की कमी की अक्सर शिकायत की जाती है और इसे तो लगभग तय ही मान लिया गया है कि बड़ों के कथा साहित्य में भी ज्यादा बढ़िया हास्य कथाएं नहीं हैं। इस लिहाज से हिंदी का बालकथा साहित्य थोड़ा सौभाग्यशाली है। यहां बहुत अधिक मात्रा में तो नहीं, लेकिन ऐसी चुस्त, खिलंदड़ी बाल कथाएं हर दौर में लिखी गईं, जो बच्चों के मन को गुदगुदाएं और उदासी के कोहरे को चीरकर उन्हें हंसना-खिलखिलाना सिखाएं। हिंदी के वरिष्ठ बाल कथाकारों में शैलेश मटियानी, द्रोणवीर कोहली, हरीश तिवारी, नारायण प्रसाद, मुबारक अली, विद्याधर शुक्ल आदि की जोरदार बाल कहानियां पढ़ने को मिलती हैं। इनमें कुछ कथाकार श्रुति परंपरा से चली आती पारंपरिक हास्य कथाओं को ही नए अंदाज में ढालकर पेश करते हैं, तो कुछ के यहां हास्य की एकदम मौलिक उद्भावना है।

शैलेश मटियानी की 'धनुषभंग' इस लिहाज से बड़ी मजेदार बाल कहानी है, जिसमें रामलीला के मैनेजर ख्यालीराम और बांकेराम साह जी के घराने की पुश्तैनी दुश्मनी रामलीला में नाटक के अंदर एक और रसीले नाटक को जन्म देती है। इधर जनता 'सियावर रामचंद्र की जय' बोलने को उतावली है और उधर राम जी का धनुष टूटने को ही नहीं आ रहा।

विश्वनाथ मुखर्जी की कहानी 'अबरा की मुसीबत' में एक बाल न कटवाने वाले बच्चे का किस्सा है, जिसे बाल कटवाने के लिए घर से पैसे दिए जाते हैं। वह पैसे बचाने के चक्कर में अपने एक सहपाठी दोस्त के अनाड़ी हाथों से उल्टे-सीधे बाल कटवाकर चला आता है। और उसे देखने वाले हैरान हैं कि 'अरे, यह क्या! झबरा के बालों को बकरी खा गई!'

हरीश तिवारी की 'उधार की वसूली' और 'अरे, मैं लंबा हो गया' में दूसरों को बेवकूफ बनाकर उधार सामान ले जाने और उसे मजे से डकारने वाले कंजन बाबू की बड़ी ही चुहल भरी कथा है।

मगर विधाधर शुक्ल की 'चोर से मुठभेड़' शायद इससे भी दो कदम आगे है, जिसमें सारा घर चोर का मुकाबला करने के लिए लाठियां-डंडे लेकर निकल आता है। बड़ी सावधानी से उसे पकड़ने की रणनीति बनती है। पग-पग पर भय, रहस्य और रोमांच, लेकिन कहानी के अंत में छत का दरवाजा खोलकर, टीन पर चढ़कर देखा गया तो एक उल्लू जोर से फड़फड़ाता हुआ उड़ गया। और उस वक्त चोर पकड़ने वालों का जो हाल था, वह शायद बयान से बाहर है।

कुंदनलाल की कहानी 'कल्लू चाचा जागे' और हसन जमाल छीपा की कहानी 'कल्लू चाचा ने सिनेमा देखा' में भी शुद्ध हास्य की बड़ी अजब-गजब छटाएं हैं।

विष्णु प्रभाकर की चर्चित कहानी 'पहाड़ चढ़े गजनंदन लाल' में हास्य का एक अलग मोहक अंदाज है। गजनंदन लाल के भारी शरीर को देखकर किसी को यकीन नहीं था कि वह पहाड़ की दुर्गम चढ़ाई चढ़ पाएंगे। मगर गजनंदन लाल बाकायदा पहाड़ पर चढ़े और अपने सहयात्रियों के दिलों के साथ-साथ सारे वातावरण में उन्होंने ऐसी जिंदादिली घोल दी कि वह सहयात्रा सभी के लिए एक यादगार घटना बन गई।

बाद की पीढ़ी के कथाकारों में सरोजिनी प्रीतम, अमर गोस्वामी, भगवतीशरण मिश्र और ओमप्रकाश कश्यप की भी कुछ बढ़िया हास्य कथाएं पढ़ने को मिली

हैं। इनमें अमर गोस्वामी की 'शेरसिंह का चश्मा', 'खुशबू की ताकत', 'हड़पराम गड़प' जैसी कहानियों में शिष्ट हास्य के बड़े सुंदर नमूने हैं।

ओमप्रकाश कश्यप की 'अकली बकली की पाठशाला' और 'बेद चाचा और उनके करामाती लट्टू' कहानियां भी ग्रामीण परिवेश में हास्य की बड़ी अजब-अनोखी झांकियां पेश करती हैं। अकली-बकली चाहे खुद पढ़े न हों और भले ही उन्हें 'अ' से 'अनार' भी याद न हो, मगर जब वे जोश में आकर पूरे गांव भर को पढ़ाने की ठान लेते हैं, तो उनके पढ़ाई के नायाब ढंग में ऐसी-ऐसी मौलिक उद्भावनाएं निकलकर आती हैं कि पढ़ते-पढ़ते बरबस नन्हे पाठकों के चेहरे पर मुस्कान खिंच जाती है। मगर बेद चाचा और उनके करामाती लट्टुओं की कथा तो ऐसी अचरज भरी है कि उसे पढ़ते हुए अतिशयोक्ति अलंकार के सारे पुराने उदाहरण फीके पड़ जाते हैं और बेद चाचा एक ऐसे किस्सागो के रूप में उभरकर सामने आते हैं कि उनका जादू सचमुच पाठकों पर हावी हो जाता है।

हास्य कथा के फलक को विस्तार देने वाली कहानियों में यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की 'टिड्डी पुराण' और सरोजिनी प्रीतम की 'गिनतीलाल की छींक' का जिक्र भी जरूरी लगता है जिनमें हास्य की बड़ी सहज बानगी देखने को मिलती है।

समय और परिवर्तनों की तेज उथल-पुथल के बावजूद यह एक अजीब-सी सच्चाई है कि हिंदी में अब भी ज्यादातर बाल कहानियां पारंपरिक ढंग की ही लिखी जा रही हैं। इधर बाल कहानियों की छोटी-बड़ी सौ से ज्यादा किताबों से गुजरने पर पता चला कि उनमें लगभग तीन-चौथाई कहानियां परंपरागत परिवेश की ही थीं। दुख तो इस बात का है कि इनमें से ज्यादातर कहानीकार बगैर यह जाने कि समय कितना बदल चुका है और दुनिया कहां से कहां पहुंच चुकी है, या कि इधर बच्चों की रुचियां कितनी तेजी से बदली हैं- इससे निहायत बेपरवाह रहकर पिटे-पिटाए ढंग से बासी कहानियां लिख रहे हैं। ऐसी कहानियां जिनमें न भाषा नई है, न कथन। यहां तक कि पुरानी लोककथाओं को ही उठा-उठाकर टीपा जा रहा है और उन्हें बहुतेरे लोग बड़े मूर्खतापूर्ण दंभ के साथ अपने नाम से छपा भी डालते हैं। मगर ये बाल कहानियां नहीं हैं। हिंदी बाल कहानी के शुरूआती दौर में भले ही उनका महत्त्व रहा हो, लेकिन मौजूदा कथा परिदृश्य में तो इनका कोई योगदान हो नहीं सकता। यह दीगर बात है कि हिंदी बाल कहानी के नाम पर ज्यादातर ऐसी लोककथाएं ही चारों ओर बिखरी पड़ी हैं और उससे बाल कहानियां और बाल कहानीकार दोनों ही उपहास की वस्तु बनते जा रहे हैं।

हां, बेशक कुछ ऐसे समर्थ बाल कहानीकार भी हैं जो पारंपरिक कथा-परिवेश का सहारा तो लेते हैं, पर उन्हें एक बिल्कुल नया सर्जनात्मक विन्यास देकर बिल्कुल नए ढंग की कहानियां गढ़कर दिखाते हैं। इस लिहाज से वरिष्ठ कथाकार देवेंद्र कुमार की कुछ कहानियां अद्वितीय हैं, जो उन्हें उस्ताद कहानीकारों की पांत में बिठाती हैं। देवेंद्र कुमार की 'सोने का जूता', 'एक बूढ़ा आदमी', 'देवरा का तूफान', 'पशु सेना' जैसी कहानियां इस लिहाज से बार-बार पढ़े जाने की मांग करती हैं। इनसे पता चलता है कि कोई बड़ा और समर्थ कथाकार परंपरागत कथा-परिवेश का इस्तेमाल करके भी कैसी ताजगी भरी कहानियां गढ़ सकता है, जो आज के नए युग-सत्य और जीवन की चिंताओं को प्रकट करती हैं। इस लिहाज से 'सोने का जूता' देवेंद्र कुमार की लाजवाब कहानी है। एक राजा युद्ध जीतकर आया, तो उसने पराजित राज्य के द्वार पर अपना जूता टांग दिया कि हर कोई उसे प्रणाम करके निकले और तब विद्रोह किसी और ने नहीं, उसके सेनापति ने ही किया, जिसने उसे बताया कि असली युद्ध तो मन की वीरता से जीते जाते हैं और जो हारता है, वह जरूरी नहीं कि कायर हो!...कि युद्ध जीतने के बाद जूता टांगकर किसी का अपमान करने का हम हमें नहीं है!

वरिष्ठ कथाकार तथा *नंदन* पत्रिका के संपादक जयप्रकाश भारती ने पारंपरिक कथा शिल्प को लेकर इधर कई सुंदर कहानियां लिखी हैं। इनमें 'दीप जले शंख बजे' बड़ी भावपूर्ण कहानी है। यह वेल्दी नामक एक विदेशी लड़की की कहानी है जिसने दीपों के त्यौहार के बारे में अपनी नानी से सुना था और तभी से उसने तय कर लिया था कि वह भारत जाएगी और स्वयं अपनी आंखों से उस त्यौहार की जगर-मगर देखेगी। आखिर वेल्दी नारायणपुर में आई, स्वामी सदानंद से मिली और भारत में आकर कुछ इस कदर 'भारतीय' हो गई कि गांव की औरतें कहने लगीं- 'यह औरत तो लक्ष्मी है। इसने हमारे गांव को बदल दिया। हमें नई रोशनी में जीना सिखा दिया।'

भगवतीशरण मिश्र की 'जब राजा हंस पड़ा', 'असली कौन', 'कंजूस सेठ' जैसी कहानियां भी पारंपरिक कथा परिवेश से निकलकर दूर जाने वाली कहानियां हैं। उमा पंत, मधुमालती जैन, रेखा रस्तोगी, मालती शर्मा, सत्यप्रभा पाल, शकुंतला कालरा, राज बुद्धिराजा, नागेश पांडेय 'संजय', जगदीश चंद्रिकेश, सूर्यनाथ सिंह, साबिर हुसैन, भैरूंलाल गर्ग, सुनील शर्मा, नीरू तिवारी, योगेश चंद्र शर्मा, श्रीनिवास वत्स, सत्येंद्र वर्मा, चंद्रदत्त 'इंदु', विमला रस्तोगी, शशि गोयल, श्याम सिंह शशि, विमला मेहता, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' आदि कथाकारों ने भी पुरानी कथा तकनीकों का सहारा लेकर पारंपरिक परिवेश की कहानियों में आज की किसी नई बात या नए सत्य को प्रकट करने की कोशिश की है। लेकिन इनमें से संभवत: किसी को वह सफलता नहीं मिली जो ओमप्रकाश कश्यप जैसे एक अपेक्षाकृत नए और युवा कथाकार की 'एक राजा था ऐसा', 'गुट्टी काका' और 'लालटेन वाली बुढ़िया' जैसी अद्भुत शक्तिशाली कहानियों में नजर आती है। 'एक राजा था ऐसा' का राजा झक्की और शक्की तो है ही, घमंडी भी इतना है कि जरा-सी बात पर पूरी झील को सुखा देना चाहता है। मगर इस अभिमानी राजा से भिड़ गया कच्ची उम्र का एक लड़का, जिसने राजा से हल चलवा लिया और यों राजा ने जाना कि मेहनत की खुशी क्या होती है। उसकी उदासी खत्म हो गई और झील पर जो बेवजह आपदा आई थी, वह भी उड़न-छू हो गई।

ओमप्रकाश कश्यप की 'गुट्टी काका' कहानी के गुट्टी काका तो इतने प्यारे और लाजवाब हैं और बच्चों पर उनका प्यार कुछ इस कदर निसार होता है कि एक बार इस कहानी को पढ़ने के बाद इसे भूल पाना किसी के बस की बात नहीं। इसी तरह उनकी 'लालटेन वाली बुढ़िया' कहानी की रहस्यमय बुढ़िया शुरू से ही बांध लेती है। शाम होते ही वह अपनी झोंपड़ी के दरवाजे पर लालटेन जलाकर क्यों रखती थी और फिर ऊंघती-सी किसकी प्रतीक्षा करती थी?...बुढ़िया की यह प्रतीक्षा किसी को पागलपन भी लग सकती है। लेकिन ओमप्रकाश कश्यप ने 'लालटेन वाली बुढ़िया' कहानी को जैसा करुण और मर्मस्पर्शी अंत दिया है, उसे पढ़ते हुए सचमुच आंखों में आंसू आ जाते हैं।

इधर हिंदी में परी कथाओं के खिलाफ बड़ा तूमार बांधा जा रहा है, मानो परी कथाएं बच्चों को बिगाड़ रही हों और उनसे बुरी और अस्पृश्य चीज तो आज की दुनिया में कुछ और हो ही नहीं सकती। मैं समझता हूं, यह दृष्टिकोण भी बड़ा अतिरंजनापूर्ण है। सवाल परी कथा के होने या न होने का उतना नहीं है, जितना अच्छी कहानी होने या न होने का है। बुरी परी कथाएं यदि बहुतायत से लिखी जा रही हैं, तो अच्छी परी कथाएं बिल्कुल नहीं लिखी जा रही हैं- ऐसी बात नहीं है। अमर गोस्वामी, उषा महाजन, सविता चड्ढा, मनहर चौहान, रत्नप्रकाश शील और कई अन्य कहानीकारों की भी ऐसी परी कथाएं मुझे याद आ रही हैं, जिनमें एकदम नई सूझ है। और मुझे लगता है, वे किसी न किसी तरह से आज की बाल कहानी के फलक को एक नया विस्तार भी देती हैं। उषा महाजन की ऐसी ही एक जोरदार परी कथा है जिसमें गांव के लोग परी के आगे अपनी यह इच्छा प्रकट करते हैं कि गांव की सब लड़कियों को पालना उनके लिए मुश्किल काम है। और फिर

लड़के तो किसी काम आते हैं, जबकि लड़कियां किसी काम की नहीं हैं। परी खुशी-खुशी गांव की सब लड़कियों को अपने साथ लेकर चली जाती है। और उसके बाद गांव कितना रूखा-सूखा, उदास और निरानंद हो जाता है, गांव के लोग किस तरह हाथ जोड़कर और गिड़गिड़ाकर उन लड़कियों से मिलने की इजाजत मांगते हैं, उनके चेहरे पर कैसा अपराध-बोध खुदा हुआ है, यह सब कहानी पढ़कर ही जाना जा सकता है।

इसी तरह सविता चड्ढा की एक कहानी में परियों की राजकुमारी सुंदर नहीं, कुरूप है और उसके चेहरे पर कुछ-कुछ चेचक जैसे धब्बे हैं। परियों की राजकुमारी की शादी धरती के एक मेहनती युवक के साथ होती है, जो साफ-साफ परी रानी से यह कहता है कि दहेज उसे नहीं चाहिए, क्योंकि उसे अपनी मेहनत पर भरोसा है। परियों की राजकुमारी उसे बदसूरत नहीं, सुंदर इसलिए लगती है क्योंकि उसका मन बड़ा सरल और उदार है।

इसी तरह अमर गोस्वामी की एक मजेदार परी कथा में परी धरती पर आती है तो उसे एक शादी की दावत में जाने का सुयोग मिलता है। वहां वह खा-खाकर इतनी मोटी हो जाती है कि बेचारी के पंख काम नहीं करते। अब वह उड़े तो उड़े कैसे? लाचार होकर उसे कुछ रोज धरती पर ही रहना पड़ता है और धरती पर उसे जो प्यारे-प्यारे अनुभव हुए, उनका तो कहना ही क्या!

मैं नहीं समझता कि ये कहानियां किसी भी तरह से हेय कहानियां हैं, बल्कि सच तो यह है कि परी कथा के कड़वे से कड़वे यथार्थ को भी बड़े दमदार तरीके से पेश किया जा सकता है। हां, इस शिल्प का रचनात्मक ढंग से इस्तेमाल कर सकने वाले उस्ताद लेखक हमारे यहां सच ही कम हैं और नकलचियों की भीड़ और भभ्भड़ बहुत है।

यों इसमें कोई शक नहीं कि आज की बाल कहानियों में बालक के भीतर बाहर की दुनिया के साथ-साथ आज की तेजी से बदलती हुई दुनिया की बदली हुई सच्चाइयां आनी ही चाहिए– भले ही हम शिल्प या कथा तकनीक कोई भी अपनाएं। इस लिहाज से हरिकृष्ण देवसरे की *पीपल वाला भूत* तथा *और बिल्ली रास्ता काट गई* किताबों की कहानियां मानो फिजूल की रूढ़ियों और अंधविश्वासों के खिलाफ एक मुहिम-सा छेड़ देती हैं। इनमें 'सही रास्ता', 'भविष्यवाणी' तथा 'और बिल्ली रास्ता काट गई' जैसी कहानियां तो अंधविश्वासों पर करारी चोट करने के साथ-साथ किस्सागोई का सुर भी बांधे रखती हैं। हालांकि ऐसी कहानियों में 'टाइप्ड' होने का खतरा बहुत है।

सुरेखा पाणंदीकर की *तीसरी लड़की* और *कार्बन कापियों की करामात* कथा संग्रहों की ज्यादातर कहानियां ऐसी हैं जिनमें नए जमाने की नई लड़की का आत्मविश्वास मानो शब्द-शब्द से छलक रहा है। सुरेखा पाणंदीकर की कहानियों की नायिकाएं ज्यादातर किशोर उम्र की लड़कियां ही हैं जो अपने को इस बात के लिए हेय मानने को कतई तैयार नहीं है कि वे लड़कियां हैं। वे अपने बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों, हौसले और दिलेरी से पग-पग पर साबित करती हैं कि आज की 'नई लड़की' बदल चुकी है और उसे कृपया हीन न समझा जाए! इसके अलावा उषा यादव, रमेश आजाद, सुभाष अखिल, मो. अशरफ खान, अनुकृति संजय, गुडविन मसीह, उषा महाजन जैसे कथाकारों की कहानियां पढ़कर समझ में आता है कि आज की कहानी किस कदर बदल गई है। इनमें रमेश आजाद की 'और कंप्यूटर बैठ गया' तो सूचना माध्यमों के मौजूदा आतंक तक पहुंचती है।

आज की बाल कहानियों की एक बड़ी खासियत यह है कि उनमें बच्चे का उथल-पुथल भरा खदबदाता मन बार-बार उझक-उझककर सामने आता है। आज की कहानी एक छोटे-से-छोटे बच्चे के इच्छा-संसार को भी नजदीक से जाकर समझना चाहती है। भले ही बच्चे के मन में अनार खाने की इच्छा हो और यह 'इच्छा बढ़ते-बढ़ते इतनी बड़ी हो गई हो कि उसे अपने आसपास की दुनिया, पढ़ाई-लिखाई और तमाम शौक भी अनार खा लेने की उस नन्ही-सी इच्छा के आगे छोटे लगने लगते हैं। दामोदर अग्रवाल की 'आपके हिस्से का अनार' इस लिहाज से बेमिसाल है और मैंने सचमुच इससे पहले किसी कहानी में बच्चे के मन में गूंजती किसी इच्छा का ऐसा चित्रण पहले कभी नहीं पढ़ा। इस कहानी का बच्चा मुरारी स्कूल जाते-आते रास्ते में दुकानदार से अनार का भाव पूछता है और चकराता है। बीमार होने का झूठा बहाना बनाता है, अनार की खीर खाने की इच्छा प्रकट करता है और जब सारे तीर बेकार जाते हैं तो वह रोते-रोते आखिर पिता के दफ्तर पहुंच जाता है और रोते-रोते ही कहता है– 'पिताजी, आप चाहे मुझे मारिए, पर मैं अभी, इसी समय, एक अनार खाऊंगा। साढ़े चार रुपये दीजिए।' कितनी सादा-सी कहानी, लेकिन उसमें बच्चे का मन जिस तरह खिंचा चला आया है, उसका कोई जवाब नहीं है।

इसी तरह शकुंतला वर्मा की 'बस पांच मिनट', हरदर्शन सहगल की 'रंग-बिरंगे पत्र', मुकेश नौटियाल की 'स्कूल में अन्ना', दिनेश पाठक 'शशि' की 'सपने में सपना', यादराम रसेंद्र की 'फटीचर', नागेश पांडेय 'संजय' की 'खोया नहीं' जैसी कहानियों में आज के बच्चे की उपस्थिति कहीं अधिक ठोस और यथार्थ रूप में नजर आती है।

हालांकि यह क्षेत्र इतना चुनौती भरा है कि अब भी यहां असीम संभावनाओं के द्वार खुले हुए हैं। बाल कहानी को अगर सचमुच बाल कहानी रहना है– आज के बच्चे की कहानी, तो उसमें बच्चे के सपने और आकांक्षाओं के साथ-साथ उस जीवन यथार्थ की भी सच्ची और प्रामाणिक शक्लें आनी चाहिए, जिनमें आज का बच्चा चाहे-अनचाहे जीने और सांस लेने को मजबूर है।

बीसवीं सदी की बाल कहानियों का एक बड़ा प्रतिनिधि संग्रह सामने आए तो बाल कहानियों के मूल्यांकन की एक सही आधारपीठिका बन सकेगी। इस लिहाज से अभी तक चुनी हुई बाल कहानियों के जो संग्रह आए हैं, उन्हें नाकाफी ही कहा जाएगा। तो भी जाकिर अली 'रजनीश' के संपादन में निकला *इक्कीसवीं सदी की बाल कहानियां* (दो खंड), उषा यादव एवं राजकिशोर सिंह के संपादन में निकला *हिंदी की श्रेष्ठ बाल कहानियां*, शमशेर अ. खान के संपादन में निकला *बयालीस बाल कहानियां* और रोहिताश्व अस्थाना के संपादन में अभी हाल में निकला *चुनी हुई बाल कहानियां* (दो खंड) संग्रह इस लिहाज से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं कि उनमें एक साथ बहुतेरे लेखकों की कहानियां पढ़ने को मिल जाती हैं। जहां तक सही प्रतिनिधित्व और दृष्टिसंपन्नता की बात है, इनमें कोई भी संग्रह इसलिए सफल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्राय: इन सभी में भरती की कहानियों की भरमार है और अच्छी बाल कहानी का कोई 'विज़न' यहां मौजूद नहीं है। साथ ही प्राय: सभी में अच्छे, समर्थ रचनाकार छूट गए हैं और हर जगह फुदकते ऐसे रचनाकार बहुतायत में मौजूद हैं, जिनके लिए बाल कहानियां लिखना महज एक 'धंधा' है!

तो भी ये नाकामयाबियां और सीमाएं निराश इसलिए नहीं करतीं क्योंकि किसी भी बड़ी सफलता का रास्ता आखिर नाकामयाबियों से ही गुजरता है। उम्मीद की जा सकती है, कभी हिंदी बाल कहानियों के सचमुच प्रतिनिधि कहे जा सकने वाले बड़े संग्रह भी देखने में आएंगे और हिंदी बाल कहानी के मूल्यांकन की कहीं अधिक गंभीर और ईमानदार कोशिशें भी। मगर इतना तय है कि आज के बच्चे अपने लिए लिखी गई अच्छी कहानियां ढूंढ-ढूंढकर पढ़ते हैं– पढ़ना चाहते हैं और यह बात खुद में बाल कहानी के भविष्य और संभावनाओं के बारे में हमें पूरी तरह आश्वस्त करती है। □

विलंबित आरंभ और अन्यमनस्क वर्तमान

***हिंदी में मौलिक बाल उपन्यास विधा के विलंबित आरंभ के पीछे सबसे बड़ा कारण हमारा विशद लोक साहित्य है जिसे बड़े लोग आज भी बाल साहित्य मानते और बच्चों को देते चले आ रहे हैं। ऐसे लेखक, संपादक और प्रकाशक भी कम नहीं, जो नैतिकतावादी, मूल्यपरक लोककथाओं को ही असली बाल साहित्य मानते हैं। लेकिन स्थितियां बदल रही हैं। बाजारवादी मांग कैरियर बनाने वाली पुस्तकों की है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के वाहक मध्य वर्ग के बच्चे पब्लिक स्कूलों में हिंदी से नफरत करना सीख रहे हैं। और तो और, उनके घरों में भी कुछ वैसा ही परिवेश बनता जा रहा है। उन्हें हैरी पाटर के नायकत्व वाला विशाल और महंगा तथा अंग्रेजी के दूसरे बाल उपन्यास पढ़ने के लिए लुभाया जा सकता है, पर हिंदी बाल साहित्य—विशेषकर बाल उपन्यास— का स्थान सिकुड़ता जा रहा है। हिंदी बाल उपन्यास का जायजा प्रस्तुत कर रहे हैं* देवेंद्र कुमार**

आज बाल साहित्य की धारा लेखकीय रचना कर्म और चिंतन के केंद्र में पहुंचती दिखाई दे रही है। यह एक बड़ी सफलता है, लेकिन इसके साथ हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि विशाल पाठक वर्ग और लेखकों की बड़ी संख्या के बावजूद हिंदी बाल साहित्य को अभी तक वह स्थान नहीं मिल पाया, जिसका वह अधिकारी है।

हिंदी बाल साहित्य के रचना भंडार में आज भी लोक साहित्य के सूत्रों पर आधारित कहानियों के संकलन ही अधिक दिखाई देते हैं। इसके बाद कविताओं का स्थान आता है। कुल उपलब्ध पुस्तकों में बाल व किशोर उपन्यासों की संख्या काफी कम है। दूसरी ओर बंगला, मराठी, मलयालम आदि में यह स्थिति अपेक्षाकृत संतुलित है। इसका उदाहरण हैं साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट आदि संस्थाओं द्वारा प्रकाशित बाल साहित्य की रचनाएं। इन भाषाओं की कृतियों के रूपांतरों और अनुवादों की संख्या हिंदी की मौलिक कृतियों की तुलना में अधिक है।

अंतर-भाषायी आदान-प्रदान का स्वागत करते हुए मैं यह भी कहना चाहूंगा कि इसका अर्थ यह नहीं है कि हिंदी में बाल उपन्यासों की रचना कम हो रही है। मुख्य समस्या उनके पुस्तक रूप में प्रकाशित होकर बाल पाठकों के हाथों में पहुंचने की है। इसके अनेक कारण हैं।

हिंदी बाल उपन्यासधारा का आरंभ विलंबित, मध्य विकासमान और गतिशील तथा वर्तमान उदासीन और अन्यमनस्क दिखाई देता है। आरंभ को विलंबित कहने का आशय है- एक धारा के रूप में इसका प्रवाह स्वाधीनता के बाद के वर्षों में ही मुखर होता दिखाई देता है। ऐसी बात नहीं कि इससे पहले के वर्षों में हिंदी बाल उपन्यासों की रचना नहीं हुई, पर छिटपुट प्रयासों को एक नियमित धारा की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

बच्चे से किशोर होते समय इस समस्या का सामना मैंने भी किया था। बचपन और कैशोर्य के संधिस्थल पर खड़े रहकर जो पुस्तकें मिलीं वे प्रेमचंद, यशपाल, जैनेंद्र कुमार, भगवती चरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, उपेंद्रनाथ अश्क, सुदर्शन, पहाड़ी, रावी, शरतचंद्र, रवींद्रनाथ, बंकिमचंद्र आदि की रचनाएं थीं। श्रेष्ठ कृतियां होते हुए भी इन्हें बाल या किशोर उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता था। ऐसा शायद इसलिए था कि हिंदी में बच्चों या किशोरों के लिए बहुत अधिक पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं। लोककथाओं की किताबें थीं, पर उपन्यास तो बहुत कम थे। हिंदी में बाल व किशोर उपन्यासों का आगमन मुख्यत: विश्व की महान कृतियों के हिंदी रूपांतरों के रूप में ही नियमित धारा का स्वरूप लेता दिखाई दिया। हिंदी बाल उपन्यास की परंपरा अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं की बाल उपन्यास धारा जितनी पुष्ट और विकसित नहीं थी। राजपाल एंड संस द्वारा प्रकाशित 'किशोरों के लिए विश्व के श्रेष्ठ उपन्यास' शृंखला का उल्लेख किया जा सकता हैं, जो अपने प्रकाशन के इतने वर्षों के बाद आज भी उतनी ही लोकप्रिय हैं। इसकी *गुलीवर की यात्राएं, राबिन्सन क्रूसो, खजाने की खोज, तिनाशियो, डान क्विगजोट, डेविड कापरफील्ड, टाम स्वेयर, मोबी डिक, जंगल की पुकार* जैसी अनेक रचनाएं हैं। इनमें से अनेक बच्चों के लिए नहीं हैं पर इसके संक्षिप्त रूपांतर बच्चों और किशोरों को ध्यान में रखकर तैयार किए गए थे, जिन्हें बाल पाठकों ने बहुत पसंद किया। ये तथा ऐसी ही अनेक पुस्तकें बाल मन के अंतरिक्ष का विस्तार करने वाली कही जा सकती हैं।

हिंदी में मौलिक बाल उपन्यास विधा के विलंबित आरंभ के पीछे सबसे बड़ा कारण हमारा विशद् लोक साहित्य है जिसे बड़े लोग आज भी बाल साहित्य मानते और बच्चों को देते चले आ रहे हैं। ऐसे लेखक, संपादक और प्रकाशक भी कम नहीं, जो नैतिकतावादी, मूल्यपरक लोककथाओं को ही असली बाल साहित्य मानते हैं।

इस मूल्यवादी साहित्य को श्रेष्ठ बाल साहित्य मानने के मूल में बड़ों का यही पारंपरिक सोच काम कर रहा है कि बच्चों को सदाचारी, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, आज्ञापालक बनाने का दायित्व हम बड़ों पर है और इसी कारण संपूर्ण लोक साहित्य

तथा धार्मिक पुस्तकों के बालसुलभ रूपांतरों को बाल साहित्य का प्रतिमान स्वीकार कर लिया गया। रह-रहकर इन्हीं को बार-बार नए रूप में लिखकर प्रस्तुत किया जाता है।

यह नैतिकतावादी दृष्टिकोण आंशिक रूप से ही ठीक है। वस्तुत: हमारा लोक साहित्य सदाचारी समाज संरचना के लिए कई शताब्दियों की यात्रा के दौरान तैयार हुआ है, जो निश्चय ही बड़ों के लिए है। बच्चों को उससे सीख तो मिलती है, पर फिर भी उसे बाल साहित्य कहना एक भ्रामक स्थिति को जन्म देता है। बाल साहित्य तो उन्हीं रचनाओं को माना जाना चाहिए जिनके केंद्र में बच्चे कहीं न कहीं अनिवार्य रूप से मौजूद हों; बच्चों की मानसिकता, सरोकार, इच्छाएं, महत्वाकांक्षाएं उनमें झलकती हों।

सन् 1952 में *बाल सखा* में भूपनारायण दीक्षित का उपन्यास *खड़खड़ देव* प्रकाशित हुआ। *नंदन* में मुट्टत्तुर्किक का उपन्यास *छतरी और छोटी बहन* धारावाहिक छपा। इस तरह प्रकाशित होने वाले उपन्यासों की सूची में कई नाम हैं– द्रोणवीर कोहली की रचना *करामाती कद्दू– साप्ताहिक हिंदुस्तान* में, तथा आबिद सुरती का *बहत्तर साल का बूढ़ा*, देवराज दिनेश का *नागराज वासुकि*, मुद्राराक्षस कृत *चींटीपुरम के भूरेलाल* तथा पाल यदुवंशी का *हरा बंगला– पराग* में धारावाहिक रूप में छपे। *धर्मयुग* में मस्तराम कपूर का *नाक का डाक्टर* तथा मनहर चौहान कृत *जादुई खड़िया* प्रकाशित हुए। उमेश प्रकाशन नामक संस्था बाल साहित्य को समर्पित थी। उसने किशोर उपन्यासमाला के अंतर्गत अनेक ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित किए। हरिकृष्ण देवसरे, सुशील कुमार, सुदर्शन चोपड़ा, मनहर चौहान, कुणाल श्रीवास्तव, शत्रुघ्नलाल शुक्ल आदि रचनाकारों ने इस दिशा में काफी सक्रियता दिखाई।

यहां मैं कुछ ऐसी रचनाओं के नाम लेना चाहूंगा जिन्होंने हिंदी बाल साहित्य के उपन्यास भंडार को भरने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मुझे प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर का बाल उपन्यास *अक्ल बड़ी या भैंस* याद आता है, जिसमें एक जमींदार के घमंडी और अड़ियल बेटे की अक्ल ठिकाने लगाने की कथा रोचक ढंग से कही गई है। वल्लभ डोभाल कृत *उस्ताद भूरेलाल* में एक शैतान चूहे और एक साधु की मजेदार कथा है। इसे प्रकाशन विभाग ने प्रकाशित किया। अभिलाष वर्मा का बाल उपन्यास *गोल्डी सिल्विया के कारनामे*, जैसा कि नाम से प्रकट है, नटखट भाई-बहन की मजेदार कथा है जिसमें घटनाएं ऐसे मोड़ लेती हैं कि आप हंसे बिना नहीं रह पाते। हरिपाल त्यागी एक जाने-माने चित्रकार हैं। उनके गद्य में व्यंग्य और हास्य की रेखाएं बहुत गहरी होकर उभरती हैं। उनका उपन्यास *ननकू का पाजामा* ऐसे-ऐसे गुल खिलाता है कि बस देखते बनता है।

ए. असफल के उपन्यास *बारह बरस का विजेता* में कथा का आधार जगनिक का 'आल्ह खंड' है। उसे पढ़ते समय रोमांच हो आता है।

जासूसी और रहस्य-रोमांच वाली कथाएं बच्चों को पसंद आती हैं। *कंप्यूटर के जाल में* शैतानों को फंसा देती हैं लेखिका इरा सक्सेना, *जंगल के दिन* कावेरी शर्मा की वन कथा है तो *जांगरीला की ओर* तथा *बांध पर आंच* में लेखक अरूप कुमार दत्त ने साहस के नए आयाम दिखाए हैं। *बांध पर आंच* में गुंडों की टोली दुष्ट साहूकार की सांठ-गांठ से गांव के निकट बना बांध उड़ा देना चाहती है, ताकि गांव डूब जाए। साहसी बच्चे उनकी इस योजना को विफल कर देते हैं।

डाकुओं के घेरे में रामकुमार भ्रमर की रोचक रोमांच कथा है। भगवतशरण उपाध्याय का उपन्यास *सागर का घोड़ा* पुर्तगाली समुद्री डाकुओं के खिलाफ एक किशोर की प्रतिशोध कथा है।

वन्य जीवन और पशु-पक्षियों वाली रचनाएं बच्चों को गुदगुदाती हैं। स्वदेश कुमार का उपन्यास *हाथियों के घेरे में* जंगली हाथियों के जीवन की झांकी निकट से दिखाता है। क्षितिज शर्मा का *पामू का घर* एक भोले हिरन की मन को छूने वाली कथा है जो फेलिक्स साल्टन की विश्वप्रसिद्ध कृति *बैम्बी* की याद दिला देती है।

विश्व की विभिन्न भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों के संक्षिप्त, सरल रूपांतर बाल पाठकों के लिए प्रस्तुत करने में बाल पत्रिका *नंदन* ने विशेष काम किया है। नवंबर 1966 में विलियम शेक्सपीयर के नाटक *वेनिस का सौदागर* के संक्षिप्त रूपांतर से आरंभ होकर यह क्रम आज भी चल रहा है।

इनमें से अनेक कृतियां किशोर उपन्यासमाला में राजपाल एंड संस से प्रकाशित हुई हैं। कुछ अन्य विदेशी उपन्यासों के रूपांतर अन्य स्थानों से छपे हैं। सेंतकजूपेरी का उपन्यास है *नन्हा राजकुमार*। इसमें किसी दूसरे ग्रह से धरती पर उतरे नन्हे-मुन्ने की फंतासी है, जो एक पायलट से रेगिस्तान में मिलता है। रूसी लेखक अर्कादी गेदार की रचना *चूक और जेक* दो शैतान बच्चों की कहानी रोचक ढंग से बताती है। योहन्ना स्वायरी के विश्वप्रसिद्ध उपन्यास *हाइडी* का संक्षिप्त रूपांतर *फूल जैसी लड़की* शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। जेम्स ओटिस का उपन्यास *टोबी टेलर* अनाथालय में रहने वाले बच्चे की मार्मिक कथा है जो सर्कस की चमक-दमक से भ्रमित होकर अनाथालय से भाग जाता है।

नेत्रहीन लेखिका फ्रांसिस ब्राउन के उपन्यास *ग्रेनीज वंडरफुल चेयर* का रूपांतर द्रोणवीर कोहली ने *रूपमंजरी* शीर्षक से किया। पुस्तक रूप में आने से पहले यह *बाल भारती* में छपा था। स्पेनी उपन्यास का रूपांतर सुरेश धींगड़ा ने *लासारो* शीर्षक से किया है। हेरियट बीयर स्टो की रचना *अंकल टाम्स केबिन*, हिंदी में *टाम चाचा की कुटिया* शीर्षक से प्रकाशित हुई है। *बास्केट आफ फ्लावर्स* को हिंदी में *फूलों की टोकरी* नाम मिला है।

हमारे प्राचीन कथासूत्रों में उदयन-वासवदत्ता की कथा बहुत प्रसिद्ध रही है। विराज की कृति *उदयन* उसी पर आधारित है। द्रोणवीर कोहली के उपन्यास *टप्पर गाड़ी* में सिकंदर के आक्रमण का समय दर्शाया गया है। एक जन्मांध बालिका का पिता उसे इलाज के लिए अपनी टप्पर गाड़ी में लेकर चलता है और एक के बाद दूसरी घटनाएं घटने लगती हैं।

आधुनिक परिवेश को आधार बनाते हुए उषा यादव ने *लाखों में एक* उपन्यास के माध्यम से समाज में लड़की के विरुद्ध होने वाले भेदभाव की ओर संकेत किया है। इसमें हैं पांच उपेक्षित बहनें और एक लाड़ला बेटा। लेकिन लड़कियां सारे तिरस्कार और उपेक्षा की बाधाएं पार करके आगे आती हैं। उषा यादव का ही एक अन्य उपन्यास है *सबक*। इसमें एक बच्चे और कुत्ते के बीच पनपने वाले संबंध की संवेदनशील कथा है।

बच्चों में देश-प्रेम की भावना दर्शाने वाली रचनाओं में विमला शर्मा का उपन्यास *एक था छोटा सिपाही* चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर रचा गया है तो बलवीर त्यागी कृत *कमाल का कमाल* कश्मीर में चलने वाली आतंकवादी गतिविधियों को केंद्र में रखता है। *सत्य का बल* यादराम रसेंद्र का उपन्यास है। *लड़ाई एक रोशनी की* बांग्लादेश मुक्ति संघर्ष पर केंद्रित एक पठनीय उपन्यास है। इसके लेखक हैं शिवसागर मिश्र। इन सभी उपन्यासों में साहसी बच्चे केंद्रीय भूमिकाएं निभाते हैं।

प्रख्यात कथाकार पंकज बिष्ट की रचना *भोलू और गोलू* में एक छोटे भालू और एक बच्चे की कथा है तो मस्तराम कपूर की कृति *नीरू और हीरू* के नायक हैं एक ग्वाला और बैल।

विज्ञान फंतासी में हरिकृष्ण देवसरे के *चंदा मामा दूर के* तथा *ला पेनी* का जिक्र किया जा सकता है।

बच्चों के संवेदनशील मन की झांकी दिखाने वाली रचनाओं में अनिता देसाई की *मोरों वाला बाग* का नाम लिया जा सकता है। इसमें देश विभाजन के समय भारत में छूट गए एक मुस्लिम परिवार की कथा दी गई है।

द्रोणवीर कोहली की रचना है *डाक बाबू का पार्सल*। इसमें एक बच्चा अपनी पर्वत यात्रा के दौरान कुछ पत्थर उठाकर ले आता है पर फिर उन्हें पार्सल से वापस भेजता है। देवेंद्र कुमार के उपन्यास *एक छोटी बांसुरी* में एक ऐसे लड़के की कथा है जो अपने लापता सैनिक पिता की खोज में निकलता है। उसके खोए पिता तो नहीं मिलते पर कुछ ऐसा अवश्य मिल जाता है जो मन के खालीपन को भर देता है।

विकलांगों का आत्मविश्वास दर्शाने वाला नीरू का उपन्यास *हम अपाहिज नहीं* एक उल्लेखनीय कृति है।

हिंदी बाल उपन्यासों के लेखन और प्रकाशन में उछाल आया साठ के दशक में बाल पाकेट बुक्स प्रकाशन के साथ, जिसे बारी-बारी से कई प्रकाशकों ने शुरू किया था। इनमें किरण बाल पाकेट बुक्स, ज्ञान भारती पाकेट बुक्स, सुबोध बाल पाकेट बुक्स तथा शकुन प्रकाशन प्रमुख थे।

अक्तूबर 1969 में दिल्ली से किरण बाल पाकेट बुक्स का आरंभ हुआ। पहले सेट में चार पुस्तकें प्रकाशित हुईं। लखनऊ से ज्ञान भारती पाकेट बुक्स का प्रकाशन आरंभ हुआ। इन रचनाओं का खूब प्रचार किया गया था। सन् 1971 में कानपुर से बच्चों की पुस्तकें निकाली गईं। दिल्ली से सुबोध पाकेट बुक्स का प्रकाशन आरंभ हुआ। सन् 1972 में दिल्ली से ही शकुन बाल पाकेट बुक्स ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया। इन सभी योजनाओं में शकुन बाल पाकेट बुक्स को अधिक सफलता मिली।

उन्होंने हिंदी के नए-पुराने लेखकों से पुस्तकें लिखवाईं। इनमें हरिकृष्ण देवसरे, मनोहर वर्मा, राधेश्याम प्रगल्भ, जयप्रकाश भारती, महीप सिंह, वीर कुमार अधीर, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', रत्नप्रकाश शील, देवेंद्र कुमार, राजेश जैन, अवतार सिंह, ललित सहगल, स्वदेश कुमार, शांति भटनागर आदि प्रमुख थे।

ऐसा लगा कि बाल साहित्य में देर से ही सही उपन्यास विधा का प्रवाह तेज हो गया है और अब यह धारा आगे और भी पुष्ट होकर उभरेगी। लेकिन यह आशा पूरी नहीं हुई। अनेक कारणों से बाल पाकेट बुक्स की गति धीमी होने लगी और फिर लगभग ठप ही हो गई। इसके उत्कर्ष काल में जो नए लेखक उभरकर आए थे, उन्होंने अपनी कलम रोक दी, इसलिए कि उनकी रचनाओं के लिए प्रकाशक मिलने कठिन हो गए थे। वे पृष्ठभूमि में चले गए। हां, जो लेखक पहले से नियमित लेखन कर रहे थे वे मंच पर बने रहे, पर बाल उपन्यासों की रचना शिथिल अवश्य हो गई। यहां एक प्रश्न उभरता है– क्या किसी साहित्यिक धारा के गतिमान रहने के लिए प्रकाशकीय प्रोत्साहन और सहयोग अनिवार्य है?

इस आलेख की तैयारी के दौरान मैं दिल्ली के अनेक बड़े प्रकाशकों से मिला। मैंने उनसे यही जानना चाहा कि बाल उपन्यास कम क्यों छापते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में अधिकांश प्रकाशकों का एक ही उत्तर रहता है– हिंदी में बच्चों के उपन्यास नहीं बिकते इसीलिए वे उन्हें प्रकाशित नहीं करते या कम छापते हैं। बाल कथाएं खूब बिकती हैं, उसके बाद बाल कविताओं की बारी आती है। असल में पुस्तकों की बिक्री का मुख्य आधार सरकारी खरीद है। इसमें कम कीमत वाली पुस्तकें खरीदी जाती हैं। उस मूल्य-सीमा में उपन्यास नहीं छापे जा सकते।

कुछ लोग कहते हैं, बच्चों में अधिक धीरज नहीं होता। वे छोटी कहानियां ही पसंद करते हैं। यह बात शायद छोटे बच्चों पर लागू होती हो, बड़े बच्चे या किशोर ऐसी कोई सीमा नहीं मानते। इसे हम अंग्रेजी तथा प्रांतीय भाषाओं में प्रकाशित बाल उपन्यासों के हिंदी अनुवादों का कलेवर देखकर समझ सकते हैं। अन्य भाषाओं से हिंदी में आए इन उपन्यासों की सूची प्रभावशाली है। कुछ कृतियां हैं– *बादशाही अंगूठी* (सत्यजित राय), *गोसाईं बागान का भूत* (शीर्षेंदु मुखोपाध्याय), *एक कौड़ी की साध* (महाश्वेता देवी), *खोए का गुड्डा* (अवनींद्रनाथ ठाकुर), *चंद्रपहाड़* (विभूति भूषण वंद्योपाध्याय), *अंतरिक्ष में विस्फोट* (जयंत विष्णु नार्लीकर जलवंती) के नारखेड़े, *रस्टी के कारनामे* (रस्किन बांड) आदि।

यदि इस तरह प्रकाशित अनुवादों की संपूर्ण सूची दी जा सके तो हिंदी बाल उपन्यास भंडार को भरने में इनके महत्वपूर्ण योगदान को पूरी तरह समझा जा सकता है।

बाल उपन्यासों के संदर्भ में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों के सोच में एक स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। जहां हिंदी के प्रसिद्ध और नामधारी लेखक प्राय: बच्चों के लिए नहीं लिखते, वहीं अन्य भाषाओं के बड़े लेखक मन लगाकर बच्चों के लिए रचना करते हैं।

यहां मैं हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार कमलेश्वर का कथन उद्धृत करना चाहूंगा। एक गोष्ठी में बोलते हुए उन्होंने कहा था– 'आजकल हिंदी में दो तरह का लेखन हो रहा है– पहला, बाल साहित्य का लेखन और दूसरा, बचकाना लेखन। दरअसल बाल साहित्य का लेखन जोखिम भरा काम है। बच्चों के लिए लिखना बहुत मुश्किल है। यदि यह आसान होता तो विविध विधाओं में लिखने वाले हम सबने इस दिशा में अवश्य प्रयास किया होता...।'

इसके साथ ही मैं बांग्ला के लेखक नीरेंद्रनाथ चक्रवर्ती का उल्लेख करना चाहूंगा। एक बार वह *नंदन* पत्रिका के कार्यालय में पधारे थे। बात चलने पर उन्होंने कहा था कि वह स्वयं को एक संपूर्ण लेखक नहीं मानते क्योंकि अभी वह बच्चों के लिए नहीं लिखते।

पिछले दिनों साहित्य अकादमी की पुस्तक प्रदर्शनी में बाल साहित्य वर्ग में अन्य भाषाओं के प्रमुख लेखकों की कृतियां दिखाई दीं, पर हिंदी के बड़े लेखक प्राय: नहीं थे। आखिर क्यों? अगर प्रकाशक अंग्रेजी तथा प्रांतीय भाषाओं के सुपरिचित लेखकों की पुस्तकें छापकर बेच सकते हैं तो ऐसा हिंदी के बड़े रचनाकारों के साथ भी हो सकता है। अब समय है कि हिंदी के बड़े लेखक बच्चों के लिए लेखन कर्म को गंभीरता से लें। जब-जब ऐसे लेखकों ने बच्चों के लिए लिखा है, उनकी रचनाएं सम्मान के साथ छापी गई हैं। इनमें मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, भीष्म साहनी, द्रोणवीर कोहली, मस्तराम कपूर, लक्ष्मीनारायण लाल, पंकज बिष्ट, विष्णु प्रभाकर, वल्लभ डोभाल, गोविंद मिश्र आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

यह कब होगा, कहा नहीं जा सकता। प्रकाशकीय प्राथमिकताएं कब बदलेंगी, इसकी भविष्यवाणी करना भी कठिन है। जो लेखक बच्चों के उपन्यास लिख रहे हैं और छपने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं, अब उन्हें पाठकों की तरफ अपने प्रयासों से बढ़ना चाहिए। अपने आप वह दिन शायद ही आए जब आज की तारीख में प्रकाशन की बाट जोहते अधिकांश बाल उपन्यास पांडुलिपियों से सुंदर पुस्तकों में बदल जाएं। ऐसा सर्वेक्षण काफी चौंकाने वाला हो सकता है जो अप्रकाशित बाल उपन्यासों की संख्या बता सके।

स्थितियां बदल रही हैं। बाजारवादी मांग कैरियर बनाने वाली पुस्तकों की है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के वाहक मध्य वर्ग के बच्चे पब्लिक स्कूलों में हिंदी

पृष्ठ 17 पर जारी

हिंदी बाल साहित्य दुबला क्यों !

***हिंदी में यह धारणा बन गई है कि बाल साहित्य लिखना बहुत हल्का तथा निम्न स्तर का काम है। हर बड़ा लेखक बाल साहित्य लिखने से बचता है और यदि किसी बाल साहित्य लेखक को प्रौढ़ साहित्य में मान्यता मिलने लगे तो वह अपने को बाल साहित्य से अलग कर लेता है। उधर बाल साहित्य की सही समीक्षा के अभाव में यहां भाजी और खाजा सब टके सेर बिक रहा है। इसका दुष्परिणाम यह है कि हिंदी बाल साहित्य के रचनाकारों में उत्तमोत्तम रचने की प्रतिस्पर्द्धा नहीं है। बाल साहित्य की वर्तमान स्थिति पर* अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'**

बाल साहित्य का सीधा, सामान्य अर्थ है बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य। चूंकि बच्चों का शैक्षिक और मानसिक स्तर बड़ों से भिन्न होता है अत: यह स्वाभाविक है कि उनके लिए साहित्य भी भिन्न प्रकार का होना चाहिए। पुन: यदि यह माना जाए कि साहित्य का अंतिम उद्देश्य मनुष्य के संस्कारों को परिष्कृत करके उसे सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित करना है तो ऐसे में बाल साहित्य की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। कारण कि बालक गीली मिट्टी का एक लोंदा होता है जिसे अभी मनचाहा आकार दिया जाना है, और आज के एकल परिवारों में दादा-दादी, नाना-नानी तो खैर रहे ही नहीं, मां-बाप के पास भी इतना अवकाश नहीं कि वे बच्चों को कुछ समय दे सकें।

हिंदी बाल साहित्य का प्रारंभ सन् 1882 ई. में भारतेंदु हरिश्चंद्र के प्रयासों से प्रकाशित *बाल दर्पण* से माना जाता है। किंतु इसकी विधिवत शुरूआत 1915 में प्रकाशित *शिशु* तथा 1917 में प्रकाशित *बाल सखा* नामक पत्रिकाओं से देखने को मिलती है। कहने का तात्पर्य यह कि हिंदी बाल साहित्य का लिखित इतिहास लगभग सौ वर्ष पुराना हो चुका है। किंतु सौ वर्षों की यात्रा के बावजूद हिंदी बाल साहित्य की स्थिति इतनी सुदृढ़ नहीं हो सकी है जो पूरी तरह आश्वस्त कर सके या यह बंगला, मराठी या किसी विदेशी भाषा के बाल साहित्य के समकक्ष खड़ा हो सके। इस कमजोरी के कुछ प्रमुख कारणों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

न जाने क्यों और कैसे हिंदी में यह धारणा बन गई है कि बाल साहित्य लिखना बहुत हल्का तथा निम्नस्तर का काम है। हिंदी का हर बड़ा लेखक बाल साहित्य लिखने से बचता है और यदि किसी बाल साहित्य लेखक को प्रौढ़ साहित्य में मान्यता मिलने लगे तो वह तुरंत अपने आप को बाल साहित्य से अलग कर लेता है। उदाहरण के लिए हम मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, डा. राम कुमार वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अमृतलाल नागर तथा विष्णु प्रभाकर आदि का नाम ले सकते हैं जिन्होंने बाल साहित्य में थोड़ा-बहुत लिखने के बाद इस तरफ से मुंह फेर लिया। बड़े और स्थापित रचनाकारों की इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि हिंदी में बाल साहित्य को दोयम दर्जे का साहित्य मान लिया गया जबकि अन्य भाषाओं में ऐसी बात नहीं है। बंगला में बड़े से बड़े लेखक ने बाल साहित्य लिखा है और पूरे मनोयोग से लिखा है। यही स्थिति मराठी और अंग्रेजी आदि भाषाओं में भी है। यहां भी बाल साहित्य को प्रौढ़ साहित्य के समकक्ष ही महत्व दिया गया है।

हिंदी बाल साहित्य की एक दूसरी बड़ी कमी है इसमें समीक्षा का अभाव। समीक्षा से न सिर्फ रचना का स्वरूप निखरता है बल्कि नई संभावनाओं के द्वार भी खुलते हैं। वर्तमान हिंदी प्रौढ़ साहित्य तथा बाल साहित्य का आविर्भाव लगभग साथ-साथ होने के बावजूद विकास की दौड़ में प्रौढ़ साहित्य, बाल साहित्य के मुकाबले काफी आगे निकल चुका है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि हिंदी प्रौढ़ साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डा. रामविलास शर्मा और डा. नगेंद्र से लेकर डा. नामवर सिंह, और डा. विश्वनाथ त्रिपाठी आदि सरीखे दर्जनों समर्थ समीक्षक हुए हैं, जबकि बाल साहित्य में हमें दूर-दूर तक कोई समर्पित समीक्षक नहीं दिखता।

अव्वल तो हिंदी बाल साहित्य में समीक्षा या आलोचना नाम की चीज है ही नहीं, और खानापूर्ति के लिए यदा-कदा, यत्र-तत्र जो थोड़ी-बहुत समीक्षा दिख जाती है वह भी प्रकारांतर से 'ठकुर सुहाती' तथा 'अहो रूपं अहो ध्वनि' के सिवा और कुछ नहीं। आलोचना की प्रथम शर्त है निष्पक्ष एवं निर्मम होना। कोई अच्छी बात आलोचक की निगाह से छूट जाए तो छूट जाए लेकिन गलत और कमजोर चीज उससे कतई नहीं छूटनी चाहिए। कारण कि कमजोरी का निराकरण तभी हो सकेगा, जब वह सामने आए। लेकिन हिंदी बाल साहित्य की समीक्षा में सब कुछ अच्छा ही अच्छा है, बुरा कुछ है ही नहीं।

मेरी समझ से इस प्रवृत्ति के मुख्यत: तीन कारण है। प्रथमत: आलोचना के लिए अपेक्षित साहस और तटस्थता का अभाव। इसके पीछे यह धारणा है कि अनायास किसी की बुराई क्यों ली जाए। दूसरे यह कि बाल साहित्य में समीक्षा को लेकर जागरूकता या प्रतिवाद की गुंजाइश नहीं है। अत: यह धारणा बन गई है कि अच्छी-बुरी जैसी भी समीक्षा लिख दी जाएगी, वह चुपचाप स्वीकार कर ली जाएगी। तीसरा कारण यह कि बाल साहित्य का रचनाकार ही समीक्षक भी है। अत: अधिकांशत: समीक्षा उन्हीं पुस्तकों की होती है जो अपनों की हो तथा इस बात को ध्यान में रखकर की जाती है कि अगली बार मेरी पुस्तक की समीक्षा उस लेखक को करनी है जिसकी समीक्षा आज मैं कर रहा हूं।

हिंदी बाल साहित्य में समीक्षा के अभाव का दुष्परिणाम यह है कि यहां भाजी और खाजा सब टके सेर बिक रहा है। यहां खराब कुछ है ही नहीं। जो भी है सब अच्छा, उत्तम और मानक के अनुरूप है। (मूंदो आंखि कतो कछु नाहीं),

कहना न होगा कि यह प्रवृत्ति मीठे जहर का काम कर रही है जिसका दुष्परिणाम यह है कि हिंदी बाल साहित्य के रचनाकारों के मध्य उत्तमोत्तम रचने की प्रतिस्पर्धा नहीं है। ऐसी धारणा बन गई है कि कुत्ता-बिल्ली, बंदर-भालू, राजा-रानी आदि पात्रों को लेकर जो कुछ भी हल्का-फुल्का लिख दिया जाए वह बाल साहित्य के नाम पर खप जाएगा।

यदि हिंदी बाल साहित्य को स्थापित करना है तथा उसे अन्य साहित्य की बराबरी में ले आना है तो स्वस्थ समीक्षा की नींव डालनी ही होगी, किसी न किसी को झाड़ू उठानी ही होगी और संबंधों तथा गुटों की सीमा से ऊपर उठकर निर्ममतापूर्वक सही तथा गलत के मध्य विभाजन करना ही होगा।

प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता, उत्तर साक्षरता तथा आपरेशन ब्लैकबोर्ड आदि विभिन्न सरकारी योजनाएं भी बाल साहित्य के विकास में बाधक हो रही हैं। इन योजनाओं में बाल पाठकों तथा नवसाक्षरों के लिए पुस्तकों की थोक में खरीददारी होती है जिसमें एकमुश्त मोटे मुनाफे की गुंजाइश रहती है। इस मुनाफे के चलते रातों-रात कुकुरमुत्ते की तरह सैकड़ों नए प्रकाशक पैदा हो गए।

चूंकि ये प्रकाशक शुद्ध रूप से व्यवसायी हैं, साहित्य से इनका कुछ लेना-देना नहीं होता। अत: ये लोग अपने व्यावसायिक हितों को ध्यान में रखकर पुस्तकें छापते हैं। यदि सरकार ने विज्ञान पर जोर दिया तो सैकड़ों पुस्तकें विज्ञान पर छप गईं, सरकार ने पर्यावरण प्रदूषण को महत्व दिया तो सैकड़ों पुस्तकें पर्यावरण प्रदूषण पर छप गईं और यदि सरकार ने नैतिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया तो सैकड़ों पुस्तकें नैतिक शिक्षा पर आ गईं। प्रकाशकों की आवश्यकता को देखते हुए आर्डर पर माल तैयार करने वाले सैकड़ों नए लेखक भी पैदा हो गए।

प्रत्यक्षत: ऐसा आभास होता है कि इन सरकारी योजनाओं से बाल साहित्य को बहुत प्रश्रय मिल रहा है, लेकिन सच्चाई यह नहीं है। इन सबसे प्रकाशकों, आर्डर पर माल सप्लाई करने वाले लेखकों तथा खरीद का आदेश जारी करने वाले अधिकारियों का भले ही कुछ भला हो गया हो, किंतु बाल साहित्य का अहित ही हुआ है। अहित इस रूप में हुआ है कि बाल साहित्य के नाम पर छपने वाली सामग्री में साहित्य बहुत पीछे छूट गया है।

यही नहीं, प्रकाशकों की इस प्रवृत्ति के कारण बाल साहित्य में मौलिकता तथा नवीनता का भी लोप होता जा रहा है। साहित्यिक कृति की पांडुलिपि देखते ही प्रकाशक नाक-भौं सिकोड़ने लगता है और बहुत स्पष्ट शब्दों में कहता है- ''भई! अब तो बाल साहित्य में कथा, कहानी या कविता की मांग ही नहीं रही, अब तो बस सूचनापरक साहित्य, जैसे- 'छींक क्यों आती है', 'बिजली क्यों चमकती है', 'समुद्र का पानी खारा क्यों होता है' आदि किस्म की कोई चीज हो तो ले आइए!'' परिणामस्वरूप तमाम ऐसे उत्साही लेखक सामने आ गए हैं जो इतिहास, भूगोल और विज्ञान की पुस्तकों से ऐसी सामग्री ढूंढ-ढूंढकर अपने नाम से छपा रहे हैं।

यह सच है कि हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान का काफी दखल हो चुका है और बच्चों को विज्ञान तथा सामान्य ज्ञान की शिक्षा देना बहुत जरूरी है लेकिन साथ ही साथ बच्चों में साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिरुचि पैदा करना भी उतना ही जरूरी है क्योंकि विज्ञान जहां व्यक्ति को आत्मकेंद्रित तथा भौतिकवादी बनाता है वहीं साहित्य उसे मानवीय मूल्यों से संस्कारित करता है। यदि आदमी में आदमियत को बचाए रखना है तो बाल साहित्य के गुणात्मक ह्रास और बाल साहित्य से साहित्य के पलायन को रोकना ही होगा। वरना आज हिंदी में साहित्यिक पाठकों की कमी का जो रोना रोया जा रहा है, वह आने वाले समय में और भी अधिक विकराल रूप ले सकता है। □

विलंबित आरंभ और अन्यमनस्क वर्तमान

पृष्ठ 15 से आगे

से नफरत करना सीख रहे हैं। और तो और, उनके घरों में भी कुछ वैसा ही परिवेश बनता जा रहा है। उन्हें हैरी पाटर के नायकत्व वाला विशाल और महंगा तथा अंग्रेजी के दूसरे बाल उपन्यास पढ़ने के लिए लुभाया जा सकता है, पर हिंदी बाल साहित्य -विशेषकर बाल उपन्यास का स्थान सिकुड़ता जा रहा है।

देश के प्रमुख हिंदी समाचार-पत्रों के रविवारी संस्करणों में खासा बदलाव आया है, वे ज्यादा रंगीन और खुले हो गए हैं। इस परिवर्तन का सबसे अधिक दुष्प्रभाव उसमें छपने वाले बाल साहित्य पर पड़ा है। *राजस्थान पत्रिका* ने बाल और किशोर पृष्ठों को लगभग समाप्त कर दिया है। *नवभारत टाइम्स* बहुत पहले ऐसा कर चुका था। *दैनिक हिंदुस्तान* ने भी बिक्री बढ़ाने के चक्कर में सबसे पहले बाल साहित्य की बलि चढ़ाई है। *अमर उजाला* का बाल साहित्य पृष्ठ एकदम फीका हो गया है।

तो फिर प्रकाशन के लिए प्रतीक्षारत लेखक स्वयं प्रयास क्यों न करें? अप्रकाशित पांडुलिपियों के प्रकाशन की चिंता एक निरुत्साहित कर देने वाला कर्म बन सकती है। लेखक प्रकाशकों का अपना लाभ कमाने दें। उनसे हिंदी बाल उपन्यास भंडार भरने की गुहार करने का कोई अर्थ नहीं। हर लेखक कम से कम अपने अप्रकाशित बाल उपन्यास की दस फोटोप्रतियां तैयार कराकर मित्रों के बीच तो बांट ही सकता है। उन्हें प्रतिष्ठित लेखकों को भेज सकता है। लेखकगण यह आदान-प्रदान आपस में भी कर सकते हैं। इससे हम कम से कम इतना तो जान ही पाएंगे कि बच्चों के लिए ऐसे कौन-से उपन्यास कब से लिखे रखे हैं जो अभी तक छप नहीं सके हैं। इन कृतियों की सूची प्रसारित हो सकती है और अगर कुछ लोग सहमत हों तो आपस में सहकारी स्तर पर बाल उपन्यास छपे भी जा सकते हैं।

लोग तुरंत कह सकते हैं कि ये उपन्यास बिकेंगे कैसे? यह नकारात्मक सोच है। जब आप निराश स्थिति को बदलने के लिए कोई प्रयोग करने निकलते हैं तो अधिक किंतु-परंतु से काम शुरू ही नहीं हो पाता। शुरू में एक-दो प्रयास भी मार्गदर्शक की भूमिका निभा सकते हैं।

प्रकाशकों को अपनी पूंजी पर लाभ चाहिए और लेखकों को चाहिएं पाठक। पढ़ने वालों को अगर सस्ती नहीं तो उचित मूल्य की पुस्तकें चाहिएं। ये सभी उद्देश्य परस्पर विरोधी दिखते हैं।

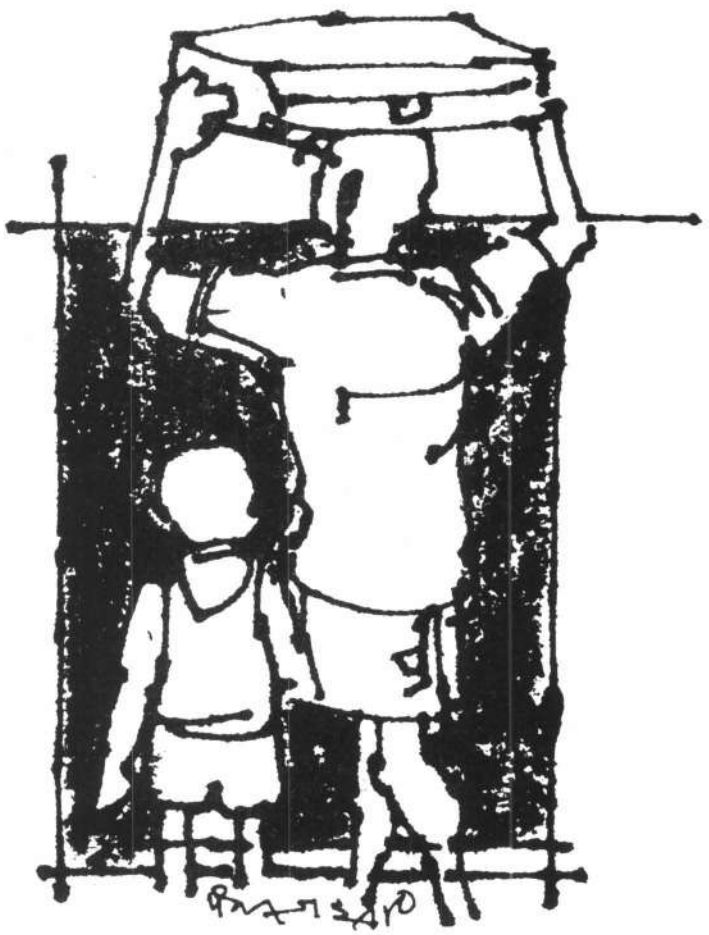
ऐसे में कोई निर्भीक व नया प्रयोग ही हिंदी बाल उपन्यास क्षेत्र में छाई जड़ता को दूर कर सकता है। अच्छा रहेगा --लेखक बाल पाठकों तक पहुंचने का रास्ता खोजते रहें, खोजते रहें, शायद वह मिल जाए। □

कहानी

मां की तलाश

युगल

रेखांकन : पंकज झा



इस कस्बे में वह कई दिनों से देखा जा रहा था। कोई दस-ग्यारह साल की उम्र होगी। देह पर कोई कपड़ा नहीं। एकदम नंगा – मादरजाद नंगा। गोरा रंग, उलझे बिखरे बाल। दुबली-पतली काया। छाती और बांह पर जले का निशान। जली जगह कुछ ज्यादा उजली दिख रही थी। वहां की चमड़ी सिकुड़ी हुई थी। उसकी तरफ जिसकी नजर पड़ती, पहली दफा जरा चौंकता। थोड़ी असुविधा अनुभव करता। फिर आगे बढ़ता चला जाता। लोग उतने बड़े बच्चे को इस तरह नंगा देखने के आदी नहीं थे। रंग गोरा जरूर था, लेकिन मैल के कारण मटमैला लगता था। जाने कब से नहाया नहीं था।

स्कूल के बच्चे उसे देखते, तो साथ चल रहे बच्चे को कुहनी मारकर इशारा करते, उसका नंगापन दिखलाते- आंखों के इशारे से। हंसते, मुस्कुराते। लड़कियां देखतीं, तो लगता कि उन्होंने कोई गलत चीज देख ली है और वे अपना सिर ऐसे कोण पर कर लेतीं कि लगता, उन्होंने उधर देखा ही नहीं है।

कालेज के लड़के, कुछ तो अपनी बातों में मशगूल हो जाते, कुछ हंसते, मजाकिया लहजे में बोलते- 'यार नंगू, कुछ तो शर्म करो। खुदा की नयामत को छिपाकर रखो।' रास्ता चलते लोगों के ओठों पर मुस्कान खिंच जाती। छोटे बच्चे देखते। अचरज से देखते कि इतना बड़ा लड़का नंगा कैसे है! पुकारते- 'नंगू! ए नंगू!' नंगू खुद से बेखबर किसी ढाबे या हलवाई की दुकान के सामने खड़ा रहता। ग्राहकों को उसके नंगेपन से असुविधा न हो, इसलिए दुकानदार उसे खाने की कोई चीज देकर जल्दी ही दफा कर देते।

बात यह थी कि वह कस्बा बहुत व्यस्त था। दुकानें सवेरे खुल जातीं। दुकानदारों को सड़क की तरफ देखने का मौका बहुत कम मिलता। मास्टर, प्रोफेसर या दफ्तरों के बाबू सड़क से गुजरते, तो उनके कदम बेचैन होते। वे बार-बार कलाई घड़ी देखते। ज्यादातर वे घर से ही विलंब से निकलते थे और अपने ठिकाने की ओर भागते दिखते थे। और फिर मेंटली रिटार्टेड कमसुखन नंगू की तरफ ध्यान देने जैसी कुछ खास बात भी नहीं थी। इतनी उम्र में कोई पागल ही तो नंगा रह सकता था।

कस्बे का कोई आदमी नहीं जानता था। कि वह कौन है। जो वह बोलता, किसी की समझ में नहीं आता। शब्द अस्पष्ट होते। कोई कुछ पूछता, तो उसके होठ खुल जाते और भीतर से गंदे, पीले दांत झांकने लगते। ऐसा लगता कि वह हंस रहा है। शायद वह किसी की बात समझता ही नहीं था। इधर की भाषा उसके पल्ले नहीं पड़ती थी। किसी ने उसको कभी बोलते सुना भी नहीं था।

लेकिन एक रात...आधी रात में कस्बे का वह मुहल्ला जाग उठा- क्या बात है? कौन रो रहा है? पीड़ा की दारुणता से भीगी करुण रुलाई, लोगों की करुणा को अवश-विवश करती रुलाई 'मां-आं-आं!' कसाई के छुरे के नीचे भोकरती गाय-भां-आं-आं! जाने कौन रो रहा है!

इस कस्बे में जाने यह कैसी बेगानगी उतर आई है। सब अपने में बंधे हैं, बंद हैं, घोंघे की तरह कवच में कैद। मिलना-जुलना बहुत औपचारिक रह गया है। मन-से-मन को जो तार जोड़ता है, वहां जाने कैसे कार्बन जमा होता गया है। लोगों का सुख-दुख अपना है, बंटा है, असंपृक्त। यह सब इस कस्बे में बहुत धीरे-धीरे समोया है। बाहर के लोग, बेपहचाने, अनजाने लोग यहां आते गए हैं, भरते गए हैं नए बसे लोग या दफ्तरों में काम करने वाले किराएदार। ऊपरी हेल-मेल वाले, बस! दूसरों का दुख उन्हें कम छूता है। शरणार्थी- सिंधी, पंजाबी, बंगाली। अलग बोली, अगल धारणाएं, व्यवहार और विचार अलग। दफ्तर बढ़े हैं और नए लोग आते गए हैं। बेगानगी गाढ़ी होती गई है।

'मां-आं-आं!' पुकार में दर्द था। दर्द में तीव्र कातरता। लोग बिस्तर पर जग गए। कौन रो रहा है? छोड़ो भी! संसार में दुख-पीड़ा क्या कम है? किस-किसकी खबर लेते रहेंगे हम?

लेकिन यह कातर 'मां-आं-मां'.... पुकार की करुणा मर्म को आहत करने लगी। लोग भीतर असुविधा अनुभव करने लगे। जैसे कोई चीज उन्हें खींच रही हो, नींद उड़ा ले गई हो, डाक्टर हरि कहीं कॉल से लौटे थे। टार्च लेकर बाहर बरामदे में आ गए। अंधेरे अलक्ष्य में उन्होंने टार्च घुमाई और आवाज ऊंची की-"कौन रो रहा है?"

डाक्टर ने उस फैले अंधेरे से पूछा था। अंधेरा निरुत्तर था। अंधेरे में पुकार का दर्द घुल रहा था। डाक्टर को पहले लगा, आवाज पूरब से आ रही है। नहीं, वह पुकार की अनुगूंज है। उन्होंने पश्चिम में टार्च घुमाई। यूनियन बोर्ड पर बिजली विभाग का कुछ ज्यादा बकाया चढ़ आया है। पिछले महीने से ही लाइन कटी है। सड़क अंधेरे में डूबी है।

दो घर आगे, जिस घर में सामंती रहती है, उसी के बरामदे में नंगू दीवार से सटा है। सामंती का दरवाजा खुला- "के? के रे! के आछे?"

बंग विधवा सामंती का स्वर डरा-डरा था। डाक्टर ने टॉर्च की रोशनी उधर की। सामंती बोली- "एइ दिके देखुन।"

कुछ लोग अपने किवाड़ खोलकर बाहर आ गए थे, औरत-बच्चे भी। वही था- नंगू। रुलाई के आवेग से देह हिलक रही थी। डाक्टर हरि वहां पहुंच गए थे- "ए! ए नंगू! क्यों रो रहा है रे?"

नंगू एक बार फिर भोकर उठा- 'मां-आं-आं-आं!'

सामने के मकान वाला अपने दरवाजे पर से ही बोला- "साले को यही मुहल्ला रोने को मिला। सबों की नींद हराम कर दी।",

एक-दो लोग सड़क पर आ गए थे।

"अरे, हम तो अभी सोए थे। कच्ची नींद... स्साला!"

"पूछो, क्यों रो रहा है?"

"भाई, बोले तब तो! कुछ बोलता तो है नहीं।"

"चलो, गायत्री!... मुन्ने!"

आवाजें इधर-उधर उठ रही थीं और गिर रही थीं और नंगू निरपेक्ष हिलकता जा रहा था, सुबकता जा रहा था।

सब लोग आगे-पीछे चले गए। सामंती ने भी किवाड़ बंद कर लिए। लेटी, तो मन में हुआ, शायद लड़के को भूख लगी हो। लालटेन लेकर बाहर आ गई। लड़के के पास आ बैठी। पूछा-"भूक आछे?"

लड़के के मटमैले गालों पर आंसुओं की लकीरें बनी थीं। पलकें गीली थीं। सामंती ने पूछा- "की रे! खाबे?"

लड़के ने सामंती को देखा। बिसूरते हुए उसके मुंह से निकला- "मां-आं!"

सामंती के भीतर बैठी मां पिघल आई। वह रोटी ले आई। पानी ले आई। एक बोरी डाल दी- "सो जा!" फिर एक फटी साड़ी तहाकर उसके ऊपर डाल दी।

फिर मुहल्ले की औरतों में चर्चा फैली कि नंगू बंगालिन का ही लड़का है। मुहल्ले में इतने सारे लोग तो हैं; नंगू आखिर उस बंगालिन के बरामदे पर ही जाकर क्यों रोया? क्यों पुकारा- 'मां'? विधवा बंगालिन का बेटा नंगू। रक्त की पुकार! बेटे के खून ने मां के खून को पुकारा।

उसके बाद मुहल्ले में छोटे बच्चों का नंगू के प्रति भाव बदल गया। वे उसे सहानुभूति से देखते। आंखें अब उसके नंगेपन को नहीं देखतीं। एक दुखी बालक, मां को पुकारता बालक...बच्चे उसे छेड़ते नहीं, चिढ़ाते नहीं। कभी कोई लड़का उसे टॉफी दे देता। टिफिन की रोटी-पराठे निकालकर दे देता।

सामंती स्थानीय अस्पताल में मिडवाइफ थी। एक दिन लोगों ने देखा, सामंती नंगू को अस्पताल के नल पर नहला रही है। साबुन लगा रही है। नंगू चिल्ला रहा है, लेकिन नहा भी रहा है। नहाने के बाद उसका रंग खुल आया।

गोपाल दर्जी का काम करता था। ग्राहकों से नाप से बीस-पच्चीस सेंटीमीटर ज्यादा ही कपड़ा लेता। ग्राहक कभी पाजामा ऊंचा होने की शिकायत करते, तो कभी कमीज तंग होने की। गोपाल झांसा देता- 'अब यही फैशन है।' गोपाल उधर से गुजारा, तो पूछ लिया- "क्या हो रहा है, सामंती?"

"एइ छेला जाने कोब से चान नेई किया।"

"अच्छा...!"

"आच्चा नेई। गोपाल, इसका वास्ते एक ठो पैंट बनाना।"

गोपाल ने दुकान में आकर अपने बचे-बचाए कपड़ों से नंगू के वास्ते सिर्फ जांघिया ही नहीं बनाया, हाफशर्ट भी बना दी। दोपहर में लाकर सामंती को दिया- "नंगू के वास्ते।"

"तो हाम को किऊं देता हाय बाबा! उसी को पिना देओ।" सामंती कुछ व्यस्त थी। घर के अंदर चली गई।

सांझ को सामंती ने देखा- नंगू जांघिया और शर्ट पहने है। उसने गोपाल से पूछा- "नंगू को कापर कून पिनाया? तुम?"

गोपाल ने अपनी परेशानी बतलाई कि नंगू को कपड़ा पहनाने में उसे कैसी दिक्कत उठानी पड़ी। उसके चीखने-चिल्लाने और विरोध करने के बावजूद धर-पकड़कर आखिर पहना तो दिया है।

अब औरतों को क्या कहा जाए! खाली समय में उनके बीच यही चर्चा रहती कि वह नंगू अवश्य ही उस बंगालिन नर्स का लड़का है। नहीं तो साबुन लगाकर उसे नहलाना, कपड़े सिलवाकर पहनाना... हम लोगों में से तो किसी ने उसकी वैसी चिंता नहीं की! हमारा कौन था, जो हम करते? जिसका था, उसने किया।

लेकिन लड़का दूसरे दिन फिर नंगा। उसने नदी किनारे जाकर निबट लिया था और जांघिया उधर ही कहीं छोड़ आया था। सामंती देखकर हंसी- "तोमरा पैंट कोथा?"

सामंती की बात नंगू के पल्ले नहीं पड़ी। उसके होठ खुल आए और पीले-पीले दांत झांकने लगे। शायद वह इसी तरह हंसता है। सामंती अस्पताल की ओर बढ़ गई।

हवा में जो बात उड़ी थी, उसकी हवा सामंती को न लगे, यह कैसे संभव था। लोगों का क्या? कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा। भानुमतियों को जोड़ने के लिए कई बातें थीं।

जिस घर में सामंती रहती है, वह जगदीश रावत का है। जगदीश कलकत्ते में अखबार के दफ्तर में प्रूफरीडर का काम करता था। एक दिन लोगों ने देखा कि वह कलकत्ते से एक बंगालिन युवती को अपने

साथ ले आया है। बाद में उस युवती को लेकर थाना-पुलिस हुई। सामंती के मामा और ममेरे भाई आए थे। उनका कहना था कि यह जगदीश, सामंती को भगा ले आया है। लेकिन सामंती मामा के साथ नहीं गई। उसने साफ कह दिया कि वह मर जाएगी, लेकिन उस कसाईबाड़े में नहीं जाएगी। वह चौबीस साल की बालिग लड़की है और उसने अपनी मर्जी से जगदीश के साथ शादी की है। जगदीश ने सामंती को मैट्रिक की परीक्षा दिलवाई। फिर एन.एम. की ट्रेनिंग दिलवाई और अस्पताल की नौकरी दिलवा दी।

पिछले साल से जगदीश घर नहीं लौटा। कहां गया? जिंदा है या मर गया! सामंती भी पता लगाकर हार गई। लेकिन उसकी प्रतीक्षा तो करनी ही है। घर है, तो किसी दिन लौटेगा ही। वह सिंदूर लगाती है, व्रत आदि रखती है। जगदीश की खोज में वह शुरू में ही सिमुलतला गई थी। वहां उसकी ममेरी बहन रहती थी। दो महीने वह उधर ही रह गई थी। उसी अनुपस्थिति को औरतें जोड़तीं कि वह उधर कहीं गर्भपात कराने गई थी। उधर किसी मिशनरी में बच्चे को रख आई थी- नाजायज गर्भपात। कंपाउंडर नाजिम की बीवी विश्वास के साथ बतलाती कि 'वो जो डाक्टर गांगुली था, सामंती उसी से फंसी थी। उसी का पेट था।'

हवा की बात भले हवाई हो, लेकिन सामंती के लिए क्लेशकारी थी। उसने नंगू को एक फटी दरी दे रखी थी। वह उसी के बरामदे में सोता था। सामंती रात में खाने के लिए पूछ लिया करती थी। लेकिन उस दिन उसे बहुत कोफ्त हुई, जब लोगों में फैली कुत्सा के संबंध में उसे मालूम हुआ। क्रोध भी आया। साथ में लोगों ने सुना, सामंती जोर-जोर से बोल रही थी- "एई खाने नेई। आन बारी ते जा। हाम तुमारा कून हाय? आपना माइ-बाबा का ऊहां जाओ। ईहां फेनू नेई आने का। बूझा तो?" और सामंती ने नंगू को हाथ पकड़कर सड़क पर ला खड़ा किया। वह क्षुब्ध थी। क्षुब्ध थी मुहल्ले के लोगों पर।

मुहल्ले के लोगों ने देखा, नंगू सड़क पर दिशाहारा-सा खड़ा रहा।

रात में मुहल्ले वालों के कानों में फिर वही आर्त्त स्वर पड़ा- 'मां-आं-आं!' नंगू का आर्त्त स्वर। सामंती के दरवाजे के बाहर दीवार से सटा नंगू बैठा था। जब दुबारा उसके मुंह से 'मां-आं-आं' निकला, तो सामंती किवाड़ खोलकर बाहर निकली- "फेनू ईहां आया? एइ पागोल आमाकेओ, पागोल बोनाएगा। जा! जा ईहां से।"

नंगू अंधेरे में सामंती को देखता रहा। उठा नहीं। सामंती अंदर से एक लकड़ी ले आई। घिराने लगी- "जा, भेगे जा! ईहां काहे कू वास्ते आया? ईहां आबे, त सांटा खाबे।" और उसने उसका हाथ पकड़कर फिर सड़क पर ला खड़ा किया। दरवाजा बंद किया और बिस्तर पर आ लेटी।

आ तो लेटी, लेकिन मन व्यथित रहा। बेचारा लड़का...क्या उम्र होगी? दस-ग्यारह साल। किसी का कुछ लेता तो नहीं है। मेरे बरामदे में आ लेटता था। लेकिन लोग... कैसे-कैसे होते हैं लोग!

नींद बहुत देर तक नहीं आई तो सामंती धीरे उठी। धीरे से किवाड़ खोले। लड़का बरामदे में नहीं था। सड़क पर भी नहीं था। पूरब-पश्चिम कहीं नहीं दिखा। सुन्न दिमाग का लड़का! कहां गया होगा?

लड़का कहीं गया नहीं था, उसी कस्बे में था। लेकिन फिर सामंती के घर कभी नहीं आया। सामंती के भीतर कलख कचोटती और उसे उदास कर जाती।

तीसरे दिन सामंती जब अस्पताल जा रही थी, तो लड़का उसके पीछे-पीछे कुछ दूर तक चलता रहा। सामंती ने डांटा- "जा, भेगे जा!" फिर अपने को कोसती रही- 'क्यों डांटा? 'क्यों भगा दिया?'

इस चार-पांच सप्ताह में वह इस कस्बे का अंग बन गया था। वह किसी के लिए नुकसानदेह नहीं था। वह है, लोगों को इससे भी कोई मतलब नहीं था। वह फिर से नंगा हो गया था। हाफ शर्ट उसने खुद आगे से फाड़कर उतार दी थी। किसी के द्वार-दरवाजे पर नहीं जाता था। सड़क पर ही रहता। खड़ा रहता या बैठा रहता। गाड़ी-सवारी से निरपेक्ष। लोग हार्न देते और अपनी गाड़ी को बचाकर निकाल ले जाते। तांगेवालों ने कई बार थप्पड़ मारकर सड़क पर से घसीटकर किनारे कर दिया था। लेकिन उसे सड़क और किनारे में कोई फर्क नहीं मालूम देता था।

ऐसे में किसी दिन हादसा तो होना ही था। हुआ। तांगे का चक्का उसके दाहिने टखने की हड्डी को तोड़ता-कुचलता चला गया। लड़का सड़क पर लोटता, चिल्लाता, छटपटाता रहा। लोग इकट्ठे हो गए। सड़क पर चलने वाले कुछ क्षण रुककर देखते। कोई कहता- 'तमाशा क्या देखते हो, इसे अस्पताल ले जाओ।' लेकिन उसे अस्पताल ले जाने वाला कोई आगे नहीं आया।

कोई घंटा भर बाद डाक्टर हरि उधर से गुजरे, तो एक तांगेवाले को पकड़कर, लड़के को उस पर लदवाकर अस्पताल ले गए। सामंती ने देखा। वह विजड़ित विस्फारित नेत्रों से उसे देखती रही। उसका कंठ थरथराया- "ए भोगवान! की दारुण!"

हड्डियों के कई छोटे-छोटे टुकड़े हो गए थे। जहां हड्डियां चूर हो गई थीं, उसके ऊपर से पांव को काट देना ही डाक्टर ने बेहतर समझा। लावारिस लड़का अस्पताल की जो हालत है, उसमें इलाज...! खैर, पांव काट दिया गया।

पांच सप्ताह तक लड़का सामंती की देख-रेख में रहा। कुछ दवाएं अस्पताल से और कुछ सामंती की व्यवस्था से उपलब्ध होती रहीं। फिर उसे अस्पताल से निकाल दिया गया। वह घुटनों के बल चौपायों की तरह चलकर होटलों के सामने या हलवाइयों की दुकान के आगे जा पड़ता।

अस्पताल के परिसर में पीपल के दो पेड़ थे। जड़ के गिर्द पक्का चौतरा बना था। इस चौतरे का इस्तेमाल बाहर से आए रोगी या उनकी तीमारदारी में आए लोग करते थे। लावारिस लाशों की अंतिम क्रिया के लिए कस्बे की एक सामाजिक संस्था थी। उसी ने यह चौतरा बनवाया था। सांझ को नंगू इसी चौतरे पर आ लेटता था। कभी दोपहर में भी आ जाता था। सामंती ने वह पुरानी दरी घर से लाकर चौतरे पर डाल दी थी। इस तरह वह जगह उसके लिए रिजर्व हो गई थी। फिर उसे बुखार रहने लगा था। आती-जाती सामंती को वह जिस नजर से देखता, उसमें जो करुणा होती, वह सामंती के अंतर्मन को छू जाती। उसने डाक्टर पांडेय से सिफारिश की- "ओइ छेला को ताप आछे। ऐक टि बेड दिते उपाय करू ना।"

डाक्टर पांडेय ने कुंचित भौंहों से सामंती को देखा- "कौन है वो तुम्हारा?"

"कून? हामारा तो के नेई। किंतु वो हामको देखता, तो हामको करुणा होता।"

"सामंती! इस देश में रोगी बहुत हैं, डाक्टर कम हैं। उससे भी कम अस्पताल हैं। किस-किसके लिए मन में करुणा पालोगी?"

लड़का अस्पताल में भर्ती तो कर लिया गया, लेकिन उसके साथ समस्या थी कि वह बिस्तर गंदा कर देता। स्वीपरों ने उसे ले जाकर फिर चौतरे पर डाल दिया। समस्या तो थी- रोज-रोज सफाई की समस्या। सामंती को कुछ बोलते न बना। फिर उसका ज्वर मस्तिष्क ज्वर में बदल गया। और एक दिन वह चौतरे पर मुर्दा पड़ा था।

सामंती ने मुर्दाघर के बीलट मल्ली को बुला कर कहा- "मल्ली! एक टू हामरा निजू काज आछे। एइ टाका धरो। पांच सौ आछे। ओइ नंगू छेला को कफन-काठी करने को वास्ते। हिंदू छेला आछे। गाड़ेगा नेइ। नदी में सीदू नेइ फेंकेगा। जो लाएगा। जो लाएगा तो?"

मल्ली बोला- "दीदी, आप बोलता है, तो हम जरूर जलाएगा।"

पृष्ठ ३१ पर जारी

पुरस्कार लेखन का मूल्यांकन नहीं, शृंगार होता है !

अंग्रेजी के बाल साहित्यकार रस्किन बांड से* दिनेश चमोला *की बातचीत

हाल के भारतीय अंग्रेजी साहित्य के लेखकों में रस्किन बांड का नाम बहुचर्चित है। वह अपनी लघुकथाओं, लोककथाओं, प्रकृतिपरक पुस्तकों, कविता, गद्य, ऐतिहासिक उपन्यासों, जीवनी एवं आत्मकथात्मक कृतियों के लिए विश्व भर में चर्चित हैं। उनका जन्म 1934 में शिमला के निकट कसौली में हुआ और पालन-पोषण जामनगर, देहरादून तथा दिल्ली में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा 1950 में पूर्ण हुई। लगभग सत्रह वर्ष की आयु में *दि रूम आन दि रूफ* (छत पर कमरा) लिखा जिस पर उन्हें 1956 में 'जॉन लेविलिनरिहस प्राइज' प्राप्त हुआ। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में *द रूम ऑन द रूफ, विंग्स्ड्रैस इन दि वैली, दि नाइट ट्रेन एट दियोली, अवर ट्रीज स्टिल ग्रो इन देहरा, स्ट्रेंजर इन द नाइट, पैंथर्स मून, कलैक्टेड फिक्शन, ऑम्निबस वॉल्यूम, ए बांड विद दि माउंटेन्स* एवं *एडवेंचर्स आफ रस्टी* आदि प्रमुख हैं। अब तक प्रकाशित पुस्तकों में उनकी बारह गद्य विषयक पुस्तकें, छह गद्येतर तथा पच्चीस से अधिक बाल साहित्य की पुस्तकें भारत के अतिरिक्त विश्व के विभिन्न देशों से प्रकाशित हो चुकी हैं।

उनके उत्कृष्ट लेखन के लिए 1992 में अंग्रेजी में भारतीय लेखन के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', बाल साहित्य के लिए 1996-98 में 'हैन्स क्रिश्चियन एंडरसन एवार्ड' तथा 1999 में 'पद्मश्री' जैसे प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त हुए। उनकी रचनाओं को भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त फ्रांसीसी, जर्मनी, डच तथा डैनिश भाषाओं में भी अनूदित किया जा चुका है। देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के स्थायी लेखक होने के साथ-साथ उनकी रचनाएं विभिन्न शिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जा रही हैं।

प्रस्तुत है बहुआयामी लेखन के धनी रस्किन बांड से हुई बातचीत के मुख्य अंश :



रस्किन बांड

कृपया अपने जन्म स्थान तथा रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए बताएं कि आप साहित्य की ओर कैसे आकृष्ट हुए?

मेरा जन्म कसौली में हुआ। लेकिन अधिकांश बचपन देहरादून में बीता। वहां मेरा ननिहाल था। मेरे पिता अलग-अलग व्यवसायों में रहे। कभी वह असम में टी प्लांटर (चाय उत्पादक) रहे, कभी स्कूल के अध्यापक। उनकी मृत्यु के समय मैं केवल दस वर्ष का था। उनकी पढ़ने में गहरी दिलचस्पी थी। वह मुझे भी नियमित रूप से पढ़ने के लिए प्रेरित किया करते थे। इसीलिए उन्होंने मुझे बिशप कोलन स्कूल में पढ़ाया। संयोग से मुझे अच्छे अध्यापक मिले, जो मुझे लिखने के लिए बराबर प्रेरित करते रहे। मुझे बचपन से पढ़ने का बहुत शौक था। मैं लगभग किताबी कीड़ा था। मैंने स्कूल की पूरी की पूरी लाइब्रेरी पढ़ डाली थी। वैसे कहने को तो मेरी कक्षा में पैंतीस छात्र थे। किंतु वास्तव में पुस्तकें पढ़ने वाले हम दो ही छात्र थे। बाकी नाममात्र के लिए लाइब्रेरी से पुस्तकें ले लेते थे तथा कुछ दिन बाद बिना पढ़े वैसे ही जमा करा देते थे।

मुझे याद है कि मैंने सर्वप्रथम स्कूल में एक कहानी लिखी थी- 'हैडमास्टर', जिसे हैडमास्टर ने फाड़ डाला था क्योंकि इसमें मैंने सच्चाई से उनके बारे में खुलकर लिखा था। स्कूल में पढ़ाई अच्छी थी। मैं केवल अच्छा पाठक ही नहीं था बल्कि खेल खेलता था, नाटकों में अभिनय भी करता था। यह सब करने की दिलचस्पी मुझमें बचपन से ही थी।

मुझे याद है कि वहां हिंदी पढ़ाने के लिए प्रसिद्ध साहित्यकार मोहन राकेश आए थे। वह हमें पढ़ाते थे। मुझे हिंदी नहीं आती थी किंतु वह मुझसे मजाक करते थे कि 'तुम हिंदी सीखो और हिंदी लेखक बनो।'

मैं कहता था– 'मैं हिंदी का नहीं अंग्रेजी का लेखक बनूंगा।' वह केवल नाटक लिखते ही नहीं थे बल्कि उनका मंचन भी करवाते थे।

फिर जब मैंने 1951 में कसौली छोड़ा तो मैं नियमित रूप से लिखने लगा। दस-दस रचनाएं मैं संपादकों के नाम भेजा करता था जिसमें से कभी नौ तो कभी सभी रचनाएं वापस आ जाया करती थीं। मेरे माता-पिता कहते– 'क्यों लेखन में समय बर्बाद करते हो। बी.ए., एम.ए. ज्वाइन करो।' जब मैं नहीं माना तो एक दिन उन्होंने मुझे जहाज में बैठाकर विलायत भेज दिया। तीन साल वहां रहा किंतु मन भारत में था। भारत में भी पहाड़ की वादियों में। छोटी-मोटी नौकरी करता था लेकिन वहीं मैंने अपना पहला उपन्यास *दि रूम आन दि रूफ* लिख डाला। एक-दो साल में उसका प्रकाशक भी मिल गया। मुझे 50 पौंड मिले। उस 50 पौंड से मैंने भारत लौटने के लिए टिकट खरीदा और वापस भारत आ गया। मेरा उपन्यास प्रकाशित हो गया।

मैं देहरादून आ गया। मेरे पिता दिल्ली में थे। मैंने एस्ले हॉल के निकट किराए पर कमरा लिया और स्वतंत्र लेखन करने लगा। तीन साल पूर्णकालिक लेखन किया। उस जमाने में क्या मिलता था! सब मिलाकर तीन-चार सौ रुपये ही बनते थे जिससे केवल गुजारा चल निकलता था। उस समय मद्रास से *माइ* नाम की एक मैगजीन निकलती थी। *माइ* मैगजीन में मेरी रचनाएं छपती थीं। वे मुझे पांच रुपये मनीआर्डर भेजते थे जिनमें से मैं तीन पिक्चर देख लेता था। एक दिन केवल ढाई रुपये का मनीआर्डर आया। मैं बहुत नाराज हुआ। मैंने संपादक को पत्र लिखा कि पांच रुपये के बजाय मुझे ढाई रुपये ही क्यों भेजे! उन्होंने उत्तर दिया कि ढाई रुपये पत्रिका की वार्षिक सदस्यता शुल्क के रूप में काट लिए हैं। चूंकि इससे मेरी रुचि को ठेस पहुंची परंतु इसके जवाब से मुझे संतुष्टि हुई। *टाइम्स आफ इंडिया, इलस्ट्रेटेड वीकली* आदि चर्चित पत्रिकाएं थीं। हिंदी में भी तब कम ही पत्रिकाएं थीं। अब बहुत हो गई हैं।

उस समय पुस्तक प्रकाशन का कार्य बहुत कठिन था। स्कूलों तथा कालेजों का कार्य बहुत होता था। साहित्यिक प्रकाशन का कार्य बहुत कठिन था। इसीलिए मैं लघु कहानियां तथा लेख ही पत्रिकाओं में छपवाता था। मेरा गंभीर लेखन 1980 से प्रारंभ हुआ। मेरी पुस्तकें 'पेंगिवन' तथा 'रूपा' जैसे चर्चित प्रकाशक छापने लगे। पहले जो पुस्तकें प्रकाशन के लिए बाहर भेजनी पड़ती थीं, वे अब भारत में भी छपने लगीं। तीन साल बाद मुझे आर्थिक भूख महसूस हुई और लगा कि अब केवल यहां रहने से काम नहीं चलेगा। लिखने के लिए धनार्जन की भी आवश्यकता है। मैं दिल्ली चला गया। नियमित पत्र-पत्रिकाओं में कॉलम लेखन शुरू किया। किंतु दिल्ली मुझे बहुत रास नहीं आई। मैं पहाड़ आ गया। सन 1963-64 में मसूरी आ गया। तब से मैं मसूरी में हूं। मेरा एक अंगीकृत परिवार है जिसमें मैं, प्रेम, उसके बच्चे व नाती-पोते रहते हैं। उस समय यह लेखन के लिए रमणीय व सस्ती नगरी थी, कम दामों पर अच्छे भवन मिलते थे। आज मसूरी बहुत महंगा है। जब मैं छोटा था तो बड़ों के लिए साहित्य लिखता था और जब मैं बड़ा हुआ तो छोटों के लिए लिखने लग गया। मेरी कुछ पुस्तकें विदेश में छपीं।

लेखन के क्षेत्र में आपको प्रेरित करने वाले कौन–कौन से साहित्यकार थे या फिर लिखने के लिए आप किन–किन साहित्यकारों से प्रेरित हुए?

जब मैं छोटा था तो मैंने बहुत सारा साहित्य पढ़ डाला था। जिन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया, वे थे– चार्ल्स डिकिंस व वार्लपोल। सामान्य रूप से मैं नहीं कह सकता लेकिन संपूर्णत: इन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया है। विकास के साथ-साथ लेखन भी प्रभावित हुआ है। भारतीय लेखकों में टैगोर द्वारा किए गए अपने नाटकों अथवा कविताओं के अनुवाद मैं पढ़ा करता था। मैंने मुल्कराज आनंद तथा कई अन्य समकालीनों को पढ़ा। यदि पचास-साठ के दशक में देखें तो कमल माकन, भवानी भट्टाचार्य, जी. वी. देशानी आदि अच्छे लेखक थे, जिन्हें आज के युवा भूल चुके हैं। ये मुझे अच्छे लगते थे। यह कहना बहुत कठिन है कि कौन प्रमुख है क्योंकि समय के बहाव के साथ-साथ बहुत अच्छे मंदे हो जाते हैं और बहुत मंदे अच्छे।

आपने गद्य व पद्य में पर्याप्त लेखन किया है किंतु अधिकांश सफलता आपको बाल साहित्य से मिली है। बाल साहित्य लिखने की प्रेरणा आपको किससे प्राप्त हुई?

बच्चों के लिए लिखने से पहले भी मैं जितनी कहानियां लिखता था, वे मेरे बचपन की थीं। मेरा बचपन एकांत में बीता। उसी एकांत ने मुझे लेखक बनाया। मैं बच्चों के एकाकीपन को बारीकी से जानता हूं। मेरा एक उपन्यास- *एंग्री रिवर* है जो स्वयं में एक उत्कृष्ट बाल उपन्यास था या फिर वह उत्कृष्ट बालकथा ही बन जाती। उसके कई संस्करण निकले। वह मेरा पहला गंभीर कार्य था। यही नहीं, उससे पहले भी बहुत कहानियां लिखीं, जैसे- 'नीली छतरी'। इसके पात्र भी अपनी तरह के संघर्षशील पात्र हैं व उसकी नायिका उपलब्धि के लिए बढ़ने वाली कथा नायिका है। कुछ कहानियां मेरे परिवार की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं तथा कुछ कहानियां मैंने बच्चों के बचपन को करीब से देखकर लिखीं कि कई-कई बच्चों का जीवन कितना संघर्षपूर्ण होता है। मेरी कहानियां वास्तविकता पर आधारित हैं। उसमें सभी के जीवन की झलकियां व संघर्ष, पीड़ा व संवेदना का स्वर दिखाई देता है।

बहुत-से लोग मुझ पर आरोप लगाते हैं कि मैंने दूर-दूराज के विशिष्ट प्रकार के लोगों अथवा मानवीय संवेदनाओं का चित्रण किया है जिसका महानगरों से कोई वास्ता नहीं। लेकिन मेरा मानना अलग रहा है। आखिर जो कुछ लिखा गया है वह निश्चित रूप से इन्हीं संवदेनाओं का प्रतिबिंब है। अनेक लेखकों की तरह मैं भी भटकता रहा लेकिन मेरे लेखन में बराबर मेरे जीवन की उपस्थिति दिखाई देती है।

वयस्कों के लिए लिखना तो आसान है किंतु बच्चों के लिए कहानी कला का विधिवत रूप में ज्ञान होना अत्यावश्यक है। जब तक आप कथा के बुनियादी तत्वों से अपरिचित रहेंगे तब तक आप अच्छे बाल कहानीकार नहीं हो सकते। अच्छे कहानीकार को कहानी सुनाने के साथ-साथ बच्चों के मन को जीतना भी आवश्यक है। मैं तो कभी-कभी स्कूल, सिनेमा हाल, बाल समारोहों में इसी उद्देश्य से भाग लेता हूं कि बच्चे क्या सोचते हैं, क्या बताते हैं और इसी सामग्री को एकत्रित करके कहानी बुन लेता हूं। विश्व के सभी बच्चे समान होते हैं, उनकी पीड़ा, विचार व संवेदना एक जैसी होती है। आज के समय में बच्चों को बस्ते के बोझ से लाद दिया जाता है।

बाल साहित्य लिखने के पीछे आपका क्या मंतव्य है?

मैं सोचता हूं कि मैंने बचपन को, बचपन के मन को बहुत करीब से देखा है। बचपन को पहचाने बिना लिखने वाले बहुत-से लेखक देखे हैं। बच्चे भी कहीं न कहीं वयस्क होते हैं। हमें उनको उसी तरह से समझना चाहिए। कई बच्चों में प्राकृतिक प्रतिभा रहती है। बाल साहित्यकार को उनकी प्रतिभा को ध्यान में रखकर उस प्रतिभा की परख करनी चाहिए। बच्चे बहुत प्राकृतिक होते हैं। जब तक उन्हें अच्छा संयोग व साथ नहीं मिलता, वे किसी की संवेदना को सीधे ग्रहण नहीं करते। वे पर्वत की तरह कठोर व फूल की तरह कोमल होते हैं। मैं लिखने तो कुछ और बैठता हूं किंतु लिखते-लिखते बालकथा ही लिख जाता हूं।

कल्पना के साथ-साथ आप क्या यथार्थ का भी चित्रण करते हैं? आपके कथानायक काल्पनिक होते हैं या वास्तविक?

हां, मैंने बहुत-सी कहानियों में कल्पना का भी पर्याप्त प्रयोग किया है। किंतु मैं चाहता हूं, जो मैं देखता हूं, सोचता हूं, वही लिखूं। मेरे लिए बाल साहित्य दो तरह से है, एक- मेरा अपना बचपन और दूसरा, दूसरे बच्चों के बारे में मेरी अपनी जानकारी। गांव-शहर, मसूरी, देहरादून, दिल्ली या किसी भी नगर के बच्चे से मुझे जो कुछ नया सोचने को मिलता है, उसे लेता हूं। सभी बच्चों के दुख-दर्द, हंसी-खुशी प्राय: एक-सी होती हैं।

आपने गद्य साहित्य के साथ-साथ कुछ कविताएं भी लिखी हैं। क्या उन रचनाओं में भी बचपन व पहाड़ की कोमलता के दर्शन होते हैं?

मैं कविताएं नियमित रूप से नहीं लिखता। जब मुझे लिखना अच्छा लगता है या जिसके पीछे कोई उत्कृष्ट भावना छिपी रहती है या जो भाव मुझे बराबर कचोटता है, मैं उसे लिख देता हूं, वही कविता बन जाती है। बहुत-सी कविताएं प्रकृति से ही निकलती हैं। कथा साहित्य को लिखते हुए कुछ आर्थिक मदद मिलती है जबकि कविताओं से जीवन नहीं चलता। फिर भी जब कभी मन में भाव आते हैं, तो कविताएं लिख देता हूं।

आपने कथा साहित्य को ही अभिव्यक्ति का माध्यम क्यों चुना जबकि आप नाटक, एकांकी या अन्य विधाओं में स्वयं को मुखर कर सकते थे?

हां, कहानी का लाभ यह है कि आप कहीं भी बैठकर कहानी लिखकर विश्व में कहीं भी भेज सकते हैं, उसे छपवा सकते हैं। नाटक लिखने में केवल लिख लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसके लिखने, छपने, खेलने तथा प्रस्तुत करने तक की विस्तृत भूमिका है।

भारत में यह सब कठिन है। दिल्ली, बंबई जैसे महानगरों में भी इसमें समस्या आती है। इसके लिए पर्याप्त समय और शक्ति चाहिए होती है। मराठी व बंगला थियेटर अच्छे हैं। चूंकि ये चलचित्र और इलैक्ट्रानिक मीडिया का हिस्सा बन चुके हैं। इसलिए यह साहित्यिक कार्य नहीं हो सकता है।

बचपन में नाटक करने व लिखने की प्रबल इच्छा थी किंतु उस ओर कभी बढ़ नहीं सका। मुझे व्यावहारिक लेखन अच्छा लगता है, जिससे मुझे संतोष भी मिलता है। यदि मैं इंग्लैंड, यूरोप में रहता तो शायद नाटक के क्षेत्र में अच्छा कर सकता था। यहां बैठकर यह सब कर पाना संभव नहीं है।

आपको कई प्रतिष्ठित पुरस्कार मिले हैं। कृपया बताएं कि क्या कोई उत्कृष्ट पुरस्कार प्राप्त होने पर ही किसी लेखक को उत्कृष्ट या सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हो सकती है?

नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है। पुरस्कार का मतलब आपके लेखन का सीधा मूल्यांकन नहीं है। यह तो एक शृंगार है। पुरस्कृत होने के बाद भी कई बार अच्छी कृतियां नहीं आतीं। यदि पिछले पचास वर्षों के नोबल पुरस्कारों पर दृष्टि डालें तो आप पाएंगे कि पुरस्कार, लेखन की जीवंतता का प्रमाण नहीं हैं। अच्छा लेखन बिना पुरस्कार के भी संभव है।

बाल साहित्यकारों को बाल साहित्य लिखते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

बाल साहित्यकार को कथा पात्र अच्छे ढंग से चित्रित करने चाहिए। पात्र सशक्त व विश्वसनीय होने चाहिए। उसे अच्छी कहानी कला आनी चाहिए। वे कहानियां ही विशिष्ट हो सकती हैं, जो बच्चों का ध्यान आकर्षित कर सकें। कहानी उपदेशों के बजाय दिलचस्प होनी चाहिए, उनमें नैतिक प्रश्न होने चाहिए -क्या सही है, क्या गलत है। कथा में अर्थपरकता के साथ-साथ संतुष्टि प्रदान करने का गुण भी होना चाहिए। कहानियों में कुछ नया करने तथा हंसाने की क्षमता भी होनी चाहिए। पात्र स्वावलंबी हों, जो स्वयं के बारे में सोचने की क्षमता रखते हों।

जब मैं बचपन को देखता हूं तो 'यंग कॉपरफील्ड' में बहुत कुछ अपना देख पाता हूं। मेरा प्रसिद्ध पात्र अंकल कंन (कंन काका) है। वह कभी अच्छा काम नहीं करता। वह उल्टा-पुल्टा काम करता है। बच्चे उसे बहुत चाहते हैं। बच्चों की अपनी स्वतंत्र विचारधारा होती है। वे वही करते हैं, जो उन्हें अच्छा लगता है। केन काका में सदैव बच्चे अपने चाचा-चाची को देखते हैं।

आज के बाल साहित्य के बारे में आपका क्या सोचना है? क्या आप इससे संतुष्ट हैं?

हां, कुछ हद तक। लेकिन बाल साहित्य में पूरा प्रयास नहीं किया जा रहा है। बाल साहित्यकार को पूर्णत: समर्पित होना चाहिए। कुछ युवा लेखक हैं जो बच्चों के लिए अच्छा लिख रहे हैं। गुणवत्ता में अंतर है। नाम लेना कठिन है। इंग्लैंड, अमेरिका में इस दिशा में बहुत अच्छा कार्य किया गया है और आगे भी किया जा रहा है। विश्व मंच पर ऐसे बहुत लेखक हैं जिन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इंग्लैंड व यूरोप में बाल साहित्य के प्रति लेखक गंभीर हैं। लोनिक कैरूप, मार्क ट्वेन की बाल पुस्तकें क्लासिक बन सकती हैं। उनकी अपनी भूमिका है। बंगला में भी बाल साहित्य को गंभीरता से लिया जाता रहा है।

साहित्य में बाल साहित्य की क्या भूमिका है?

मैं इसे साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानता हूं। लेकिन यह पुस्तक व लेखक के प्रभाव को स्पष्ट करता है। यह सामान्य रूप से सभ्यता का प्रतिबिंब होता है। ऐसा लेखन जो सामाजिक स्वीकृति के साथ-साथ बच्चों के साथ न्याय करे व जिसे वयस्क भी पढ़ सकें, उत्कृष्ट कहा जा सकता है। हमेशा हर जगह महापुरुष होते रहे हैं। मार्क ट्वेन के *हकलबरी फिन* में हक की संघर्ष कथा का वर्णन है, जो वहां के जनजीवन की सामाजिक बुराइयों को रेखांकित करती है।

बाल साहित्य के भविष्य के बारे में आपका क्या सोचना है?

पश्चिमी देशों में इसका भविष्य व्यापक है। भारत में भी यह क्रम जारी है। भारतीय भाषाओं में हमें संघर्ष करना होगा। बच्चा स्कूल जाता है, उसे स्कूल की पुस्तकें पढ़नी चाहिए। आज अंग्रेजी माध्यम के या कई अन्य स्कूल केवल फीस बटोरने का काम कर रहे हैं। माता-पिता उनके साथ पढ़ें, उन्हें बाल साहित्य के प्रति सजग करें, उनमें रुचि विकसित करें। बालकों को साहित्य पढ़ने की रुचि घर में ही सिखानी चाहिए।

पुस्तकों के प्रति प्रेम होना आवश्यक है। दूरदर्शन आदि ने इस प्रभाव को कम तो कर दिया है फिर भी पुस्तकों के प्रति लगाव घर से प्रारंभ किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है माता-पिता भी बच्चों को प्रेरित करें। यदि बच्चे में पढ़ने की ललक प्रारंभ हो गई तो वह अंत तक बनी रहेगी। ऐसा बालक जीवन के संघर्ष में अकेला नहीं रहता। इसके लिए घर पर अभिभावक व माता-पिता को अच्छा करने व पढ़ने की नींव डालनी चाहिए। फिर भी साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में बाल साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। □

निवेदन

(नन्ही घुन्नी से...)

मत तोड़ री
फूल अभी !

इन्हें डालियों पर ही
टंका रहने दे

आज तू अपने भगवान को
हल्दी–कुंकुम वगैरा ही
ज्यादा लगा देना

फूलों के खिलने की बात
हवाओं ने उड़ा दी है
चुपचाप
देखना
अभी थोड़ी देर में
सुंदर–सुंदर पंखों वाली
तितलियां प्यारी–प्यारी
आकर थिरकेंगी यहां

वे सारी
जाने कौन देश से आती हैं
मन में इक मिठास लिए

फूल न दिखे अगर
तो उनकी सारी आस
खट्टी हो जाएगी

फिर है ना
फूलों की रानी
तुझसे कट्टी हो जाएगी
भगवान को तू
क्या किसी की कट्टी
चढ़ाएगी ?

मत तोड़ री
फूल अभी...!

नन्हा स्वावलंबन

(सोई हुई 'गोली' के प्रति)

अंगूठा मुंह में दुबका है
तू गाढ़ी नींद में खोई है

नींद
तुझे ले गई है
एक सुनसान टापू पर
जहां तेरे सिवा
नहीं है कोई और
नहीं है कोई और

उस वीरान
एकाकीपन में
यही अंगूठा
तेरे मुंह में घुल–घुलकर
मीठा–मीठा दूध
बनाता है
तुझे पिलाता है

सच कहूं
तेरे मुंह में दुबका
यह... 'अंगूठा' नहीं है
–थन है
तेरा ही थन

यों तू मां बनी है
खुद अपनी !

(मां ! बेटी का अच्छी तरह
ख्याल रखना!)

सौंधा कटाक्ष

(नन्ही बुन्नी के प्रति)

मजा तो तब आया
जब एक तितली
मंडराते–मंडराते
तुझ पर आ बैठी

और तब...
गुलाब, गेंदा, शेवंती, चंपा
सब
खूब जोर–जोर से हंसे थे
कि– लो, तितली
उल्लू बन गई !
मजा तो तब आया...

पर तू है न
रंग–गंध से बुना
इतना सुंदर
भ्रमजाल रचती है, री
कि कोई भी तितली
उसमें सहज ही आ फंसे

तेरी
इसी सुकुमार प्रतिभा का
उसने सम्मान किया है
कि तितली ने यों बैठकर
तुझे
'फूल' का उपमान दिया है

तब
गुलाब, गेंदा, शेवंती, चंपा
सब
जल–कुढ़ कर मौन रहे थे
...मजा तो तब आया !

लोरी : एक कहानी

(बच्चे की जुबानी)

कोई मंतर था
मां के होठों से निकला
कि सुरीला जादू था कोई
क्या पता...
जो मेरे ऊपर छाने लगा
आ–आकर कानों में गाने लगा
आंखें मूंदी जाने लगीं
अंधियारा–सा छाने लगा
और धीरे–धीरे–धीरे

मां गुम हो गई न जाने कहां
फिर मैं मां के आंचल से निकल
कहीं दूर... बहुत दूर जा रहा था
चांद के जादुई कालीन पर बैठ
तारों को पकडता हुआ...

क्या निराली दुनिया थी
पर दुख है कि मां वहां नहीं थी
परियां थीं
हवाओं की सर्र–सर्र
उड़न तश्तरियां थीं
नींद के बाग में
सपनों की मंजरियां थी...

फिर धीरे–धीरे–धीरे
मां के जादू–मंतर का
जैसे खत्म हो रहा था असर
सूरज उगने लगा था
और टूट रहा था
रात का तिलिस्म...

तब अचानक...
जादुई कालीन हुआ गायब
मैं गिरा उस लोक से
मां की गोद में– 'धप्प !'
'मां, मैं आ गया!
मां, मैं आ गया!!' (जागरण)
(मां मेरे चेहरे पर खिलखिलाती
सुबह देखती है और सीने से
चिपका लेती है।)

बच्चे झूठे नहीं होते

बच्चे झूठे नहीं होते
मगर पसंद होते हैं
मां–बाप को झूठे बच्चे...

उनसे कबूलवाते हैं 'झूठ'
पढ़वाते हैं 'गलत पाठ'!

बच्चा भगवान होता है
मां–बाप नहीं हो सकते भगवान

भगवान से
इंसान बनते–बनते
सीख लेता है बच्चा
इस जगत के सैकड़ों 'अपराध'।

अपराधी हो सकते हैं मां–बाप
बन सकते हैं हैवान/शैतान
मगर बच्चा
अपराध बोध से वंचित होता है...

हत्या, लूट, बलात्कार
झूठ, फरेब, भ्रष्टाचार
नहीं सीखकर आता वह
अपनी मां के गर्भ से

उसकी जुबां पर देवता वास करते हैं
सच है
बच्चा हो सकता है भगवान

लेकिन विडंबना है
पसंद नहीं करते हम
बच्चे को भगवान के रूप में देखना
पूजा करते हैं– अर्चना करते हैं
पत्थर के देवता की

जबकि– अपनी गोद में
खेल रहे बच्चे को
धीरे–धीरे पिलाते जाते हैं
झूठ, फरेब, नफरत
ईर्ष्या और ऊंच–नीच की जन्मघूंटी...!

भगवान का दूसरा रूप

बच्चा सीखकर नहीं आता भाषा–ज्ञान
नहीं लेकर आता मां के गर्भ से
शब्दों का विशाल खजाना

चाहे सही, चाहे गलत
पढ़ाया जाता है नित नया पाठ
'अ' से 'अनार', तो कहीं 'अ' से 'अमरूद'
'ब' से बत्तख तो कहीं 'ब' से बंदूक
'ई' से ईख, तो कहीं 'ई' से ईश्वर
'ध' से धन, तो कहीं 'ध' से धर्म...

बच्चा नहीं जानता
धन और धर्म का अंतर
'ईख' और 'ईश्वर'
जात–पांत / ऊंच–नीच
और अच्छे–बुरे के बीच भेद...

पढ़ाया–सिखाया जाता है
इसी धरती पर उसे
स्वार्थ की खातिर
अपने–अपने रंग–ढंग से...

पढ़ाया जाता है ऐसा पाठ
जो धर्म को जोड़ सके नैतिकता से
'ईश्वर' को तौल सके मानवता से...

और धीरे–धीरे सीख ले वह
पूरी अच्छाई– पूरी बुराई...

मगर यह भी जान लो तुम
कि बच्चा सिर्फ 'भगवान' नहीं होता
भावी शैतान भी होता है वह
आखिर किस रूप में देखना चाहते हो तुम
बच्चे को?

'भगवान' के रूप में
या 'शैतान' के रूप में ?
'पशु' के रूप में या
'इंसान' के रूप में !

तुम बेटा नहीं, बेटी ही हो

विनय कुमार 'विनायक'

बड़ा कठिन है एक पिता के लिए
पुत्र और कन्या में अंतर जान पाना
एक किसान की तरह पिता भी
निष्काम भाव से विसर्जित करता है बीज
रजस्वला धरती में बिना विचारे
कि कौन–सा बीज नर है
कौन–सा नारायणी
दूर सोरीघर से आती किहूं–किहूं की पुकार
काफी है एक पिता के पितृ सुख पाने के लिए
पिता, पुत्र या कि कन्या का बहुत बाद में जानता है पिता
सुनकर / जानकर / अनुमान करके ही

बड़ा कठिन है एक पिता के लिए
पुत्र और कन्या के जैविक अंतर को मान पाना
जिसे समय–समय पर
जननी और प्रकृति ही जताती है
एक पिता जब तक सुनता रहता है
पापा–पापा की तुतली आवाज
मग्न रहता है टॉफी–मिष्टान्न की जुगत में
सहलाते नन्ही–नन्ही चोंच
छोटे–छोटे पेट
कोई पिता ऐसे में कैसे विश्वास कर सकता
कि अलग–अलग जीव हैं पुत्र और कन्या
एक जनक जो होता किसान–सा भोला
लहलहाते फसल पर निहाल होने वाला
जननी के बताने
प्रकृति के चेताने पर भी
मानना नहीं चाहता कि अलग–अलग होना है
पुत्र या कि कन्या का पिता होना
तब जानकी स्वयं लीपकर पूजाघर
उठाकर शिवधनुष
पूजकर गौरी–भवानी
छोड़कर तुतलाना और गुड़िया को साड़ी पहनाना
अहसास दिला देती है पिता को
कि मैं बेटा नहीं, बेटी हूं

सृष्टि के आरंभ से ही
घर के झाड़ने–बुहारने
सांझबाती देने
अतिथि को लोटा–भर जल देने
बड़ों के थके पांव को दबाने से ही
जान लेता है पिता
कि तुम पुत्र नहीं, कन्या हो
तुम्हारे इस भोलेपन से ही हर पिता
बिन पढ़े समझ लेता है मनुस्मृति का
वह विवादास्पद श्लोक
कि नारी बाल्यावस्था–भर पिता के वश
यौवन भर पति के वश, पति के बाद पुत्र के वश
पर स्वतंत्र कभी छोड़ी नहीं जा सकती जीवन भर

युगों का अनुभव है अनपढ़ किसान को भी
कि बेटा गेहूं का पौधा है
और बेटी धान का बीहन
जिसे स्वजाए क्षेत्र से उखाड़ पराए खेत में रोपना ही पड़ता है
सदा से अपने खून–जिगर को अपनी कोख से नोचकर पराई
हथेली में उगाने के पहले हर बेटी का बाप
अपनी क्षमता भर परखता रहा है उस पराए हाथ की
शुचिता
मजबूती और भरोसा
विश्वास
कभी राम से तुड़ाकर सीता के उठाए उस शिव धनुष को
कभी सव्यसाची से लक्ष्य भेदाकर मीनाक्षी याज्ञसेनी–सी
चमकती–घूमती मीन की आंखें
अपनी बिटिया के लिए राम को पाने
या अर्जुन को जमाता बनाने के लिए
समझौता करता रहा हर जनक
स्त्रैण समधी दशरथ
कुटिल समधिन कैकेयी या वाकवीरा कुंती के
प्रण–हठ–ठसक से देकर दहेज में
घोड़ा–हाथी/ होंडा–मारुति...
और सुनता रहा
अपनी जानकी के
जमींदोज होने की कथा या
अपनी याज्ञसेनी के बर्फ में गल जाने की व्यथा !

नन्हा बच्चा नींद में

अभी तो कुछ देखा नहीं
भेद कौन बतलाय
नन्हा बच्चा नींद में
क्यों रोए मुस्काय !

पढ़ा, सुना, परखा यही
लोरी सुनकर सोय
मां भोली, अनजान है
बहरा बच्चा रोय !

आग लगी घर गांव में,
दूध जहर–आलूद
आंगन–आंगन बो दिया
किसने ये बारूद !

इक दूजे के खून के
प्यासे हैं शैतान
हमसाए थे देवता
कौन कह गया कान !

राम रहेंगे इस तरफ
और उधर इस्लाम
जब से घर दो घर हुआ
खोया सुख–आराम !

दोनों को महंगे पड़े
इक घर के दो द्वार
यहां न वो गलियां रहीं
वहां न वो बाजार !

आओ मिल जाएं गले
शिकवे–गिले भुलाय
हम दोनों की दुश्मनी
बच्चों तक क्यों जाय !

चलिए मेरे संग

दुख, दुख है, दुख मूल है
आंसू दुख का भाग
रोने से कुछ देर– दुख
दिल से जाता भाग !

कच्चा गोला सुई से
साबुत साफ निकाल
दुख आता है घुड़चढ़े
जाता चींटी चाल !

दुख से लड़ने के लिए
मन पर कर अधिकार
जब तक मन बस में न हो
सब जप–तप बेकार !

दुनिया दोनों हाथ से
कर देती मजबूर
सुखी देख सहती नहीं
दुख में दौड़े दूर !

युगों–युगों से चल रही
इस दुनिया की रीत
सुख–दुख जीवन मौत का
मिला–जुला संगीत !

जीवन–लीला बावरे
धूप–छांव का खेल
सुख भोगे हंस–खेलकर
दुख भी हंसकर झेल !

सब रहिए सुख चैन से
चलिए मेरे संग
सबको दावत दे गया
मौजी मस्त मलंग !

मंजिल कितनी दूर

पोथी से पोथा बने
इक साधारण बात
बिना ज्ञान किस काम के
कागज, कलम, दवात !

बोध न मंजिल का जिसे
ना रस्ते का ज्ञान
रथ दलदल में ले चला
पागल है रथवान !

मंजिल कितनी दूर है
कहां पड़ेगी रात
कांपे मेरे प्रश्न पर
कोचवान के हाथ !

सोकर खोवे आलसी
हाथ मले पछताय
दुर्लभ माया ज्ञान की
जो जागे सो पाय !

पर नारी मनमोहनी
अपना ऊत सपूत
जब दुख नाचे सिर चढ़ा
ज्ञान भगाए भूत !

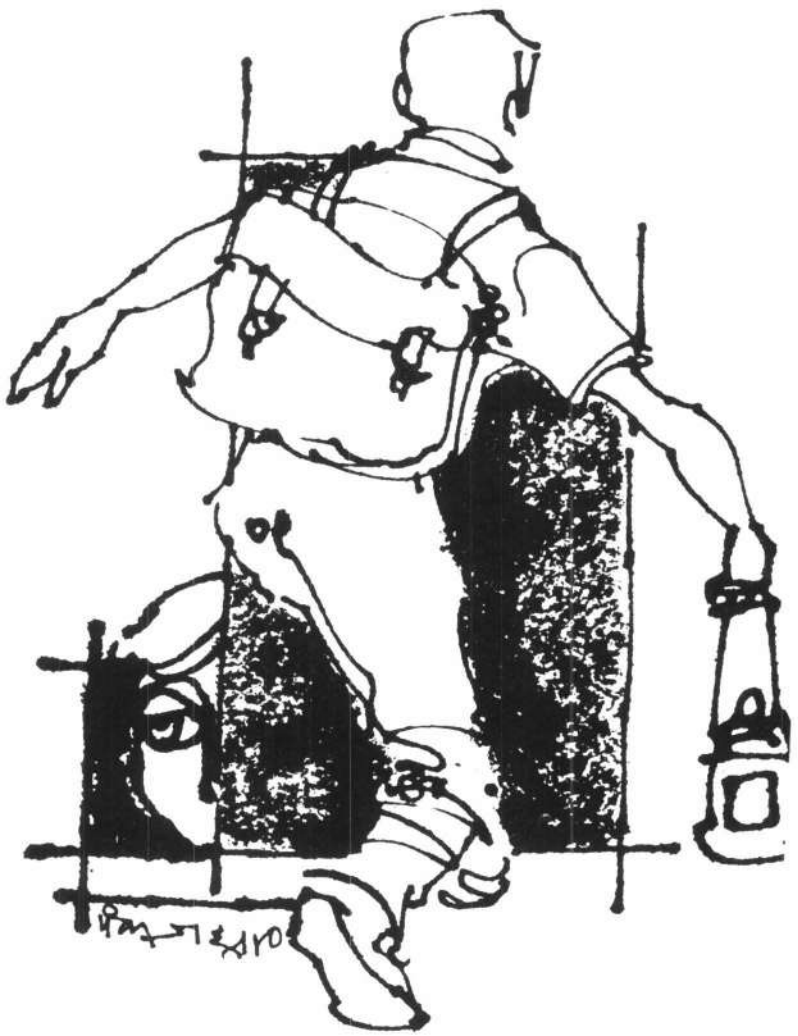
मिली नहीं मंजिल उन्हें
जिन्हें बहुत था नाज
जो धुन के पक्के रहे
सफल रहे 'ऐजाज' !

कहानी

खरगोश

गुलशन राय मोंगा

रेखांकन : पंकज झा



स्कूल से घर वापस आते ही सुमी अपना बस्ता एक ओर फेंककर हर दिन की तरह आवाज देती– 'सेमल'!

वह भी इस आवाज के लिए जैसे पहले से मुंतजिर बैठा हो। सुमी को रू-ब-रू पाकर उसकी बटन-सी आंखें चमक जातीं और दौड़कर वह पास आ जाता। सुमी के पांवों में लोट-पोट होने लगता। धीरे से उसे उठाकर, उसका स्पर्श पाकर वह गदगद हो जाती है। एक नरम, रेशमी गुदगुदा-सा अहसास! ममतामयी एक मां जिस प्रकार अपने नवजात शिशु को संभालकर प्यार करती है, उसी प्रकार आठ वर्ष की यह मां सुमी लगभग एक वर्ष के खरगोश को वैसा ही स्नेह और दुलार दिया करती जो इंसानी जीवों के हिस्से की चीज है।

सुमी की आयु खेलने-कूदने की भले हो, उसकी मानसिक आयु और परिपक्वता अपनी उम्र के दूसरे बच्चों से कहीं अधिक है। मात्र कक्षा तीन में पढ़ रही उस बालिका की कल्पना शक्ति का परिचय इसी बात से चलता है कि यह सैमल नाम उसी का दिया हुआ है।

''सेमल की रुई सबसे नरम होती है ना मां, तो मैं इसका नाम सेमल ही रखती हूं।''

''बहुत अच्छा नाम सोचा है तूने''! मां और बाबा दोनों ने इस नाम की जहां जोरदार ताईद की वहीं पर अनि यानि अनिमेश ने अपने चिड़चिड़े स्वभाव के अनुरूप ठोंगा मार ही दिया– ''हुंअ सेमल! यह भी कोई नाम हुआ! बेकार है!''

मां, ''देखो ना दादा को, इसे मेरी कोई बात अच्छी नहीं लगती।'' अपने भाई की शिकायत करते हुए वह रोने-रोने को हो आती। अनि उससे मात्र तीन-चार वर्ष बड़ा है। इसलिए वह हर समय सुमी पर रौब गांठता रहता है। अपना हर काम– छोटा हो या बड़ा– वह सुमी से करवाता है– 'जा मेरा जूता उठाकर ला। मेज पर रखी मेरी किताबें बैग में डाल।' भूल से कभी उसका ज्योमैट्री बाक्स या फिर कभी कलम इत्यादि छूट जाता तो वह उस पर बरस पड़ता 'तेरे दिमाग में तो भूसा भरा है। बिना कलम के मैं क्या लिख सकता हूं?' और फिर क्रोध में वह कभी उस पर हाथ भी छोड़ देता जिसके लिए बाद में मां से डांट भी खानी पड़ती।

सब जानते हैं, सुमी बहुत बुद्धिमान और होशियार लड़की है। अपनी कक्षा में सदा पहले-दूसरे नंबर पर रहती है। भूसा तो दरअसल अनि के दिमाग में भरा है जो दो साल से एक ही कक्षा में अटका हुआ है– पांचवीं। जबकि कायदे से उसे आज सातवीं में होना

चाहिए था। सब जानते हैं, वह लद्दड़ है हर चीज में। पूरा-पूरा दिन आवारागर्दी या हर समय उसे खाने की लगी रहती है।

अभी उस दिन, पता नहीं कहां से दो कबूतर पकड़ लाया। मां की नजर बचाकर खुद ही दाव लिया, उन्हें छील-काटकर तरकारी के लिए तैयार कर दिया। तब मां बोली– "पहले बता तू, किसी के पाले हुए कबूतर तो नहीं है?"

"नहीं मां", ये तो मेरे बंधु कमलेंदु ने मुझे दिए हैं। बोला– 'हमारे पास तो बहुत सारे हैं। दो तू भी ले जाएगा, तो क्या फर्क पड़ता है।'

"अच्छा!" मां विश्वास-अविश्वास के बीच झूलने लगी थी "ठीक है, किसी दिन पूछ लूंगी तेरे बंधु से।" और मां ने तरकारी बना दी।

सुमी को छोड़कर सभी ने खाना खाया। पता नहीं क्यों, अपनी आंखों के आगे किसी जीव की हत्या उससे देखी नहीं जाती। घर में मांस दोनों वक्त बनता है पर वह बाजार से जिस रूप में आता है, वही खा लेती है। अक्सर छोटा माछ, टेंगड़ा माछ, भका, पुठि या रहु माछ। महीने, बीस दिन में बाबा कभी-कभी हिलसा या बाऊस ले आते हैं। मछली को छोड़कर दूसरा कोई मांस उसे खाने लायक नहीं लगता है।

अब कबूतर जब सबने खा लिया तो उसका असली मालिक आकर पूछताछ करने लगा कि उसके दो कबूतर मिल नहीं रहे हैं। मां ने अनि पर क्रोध भरी दृष्टि डाली। वह सिर झुकाए मौन बैठा रहा तब मां ने धीरे से बाबा को पूरी बात समझाई। वह भी बड़े धर्म संकट में पड़ गए। झूठ कैसे बोलते! कबूतर तो पेट में पड़ चुके थे। किसी तरह साहस जुटाकर उन्होंने दूसरे मुहल्ले से आए उन सज्जन को वास्तविकता से परिचित कराया। उन दो कबूतरों के मुआवजे के एवज में एक सौ रुपये का नोट जबर्दस्ती थमा दिया।

वह सज्जन पहले तो आग-बबूला हो गए। सौ रुपये के नोट को बार-बार फेराने लगे और यहां तक कि उसे जमीन पर फेंक दिया– 'मुझे पैसे नहीं, मेरे कबूतर चाहिए।'

कुछ देर तक भद्रलोक वही रट लगाए रहे। फिर कुछ विचार कर कि ये लोग उससे यदि झूठ बोल देते तो भी वह क्या कर लेते! बाद में वह मान गए।

उनके जाने के पश्चात मां और बाबा दोनों एक साथ अनि की ओर मुखातिब हुए तो देखा, वह तो रफूचक्कर हो गया था।

'पिटने के भय से दादा चुपचाप बाहर चला गया है।' 'सुमी ने यह खबर दी।

"कब तक वापस घर नहीं आएगा, आने पर ऐसी खबर लूंगी कि...।" अनि जानता है, कुछ ही घंटों में जब मां का क्रोध शांत हो जाएगा तो चुपचाप आकर अपने बिस्तर में दुबक जाएगा।

पर उस रोज ऐसा नहीं हुआ। देर रात तक वह घर नहीं लौटा तो मां-बाबा दोनों की चिंता बढ़ गई। बाबा अक्सर रात दस बजे के लगभग बाड़ी का मुख्यद्वार बंद कर दिया करते हैं। अनि की प्रतीक्षा में उस रात ग्यारह बज गए। सब लोग जग रहे थे। मां-बाबा दोनों चिंता करते-करते आपस में कुछ बतियाते रहे और सुमी सेमल को अपने सीने से सटाए हुए बिस्तर में लेटी-लेटी उनकी बातें सुन रही थी।

"इस लड़के के मारे तो जीना हराम हो गया है।" मां कह रही थी। बाबा ने सहमति में हामी भरी।

"लड़की जितनी समझदार निकली है, यह उतना ही दुष्ट।" और दिन अपनी तारीफ सुनकर सुमी आनंदित होती, पर आज चिंता के इस माहौल में उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था।

"आखिर अनि कहां भटक रहा होगा इतनी रात में!" इसी उधेड़बुन में समय बीतता जा रहा था। बाबा आखिर उसे ढूंढने के लिए घर से निकल पड़े।

मां से यह कहकर निकले कि शहर में हालात अच्छे नहीं चल रहे। लड़के का इतनी रात अकेले यूं भटकना ठीक नहीं है। किसी भावी आशंका से त्रस्त देखकर वह उदास हो गई। बाबा को बाहर भेजकर मां मुख्यद्वार को भीतर से बंद करके वापस कमरे में आकर फिर चिंता निमग्न हो गई।

"तेरे को भी नींद नहीं आ रही, सुमी?" मां का स्वर था– "कल स्कूल जाना है! तू सो जा अब, मेरी अच्छी रानी मां!" उसे दुलार कर सोने के लिए कहा, पर वह कोशिश करने पर भी सो नहीं पाई। उसकी भी नींद कहीं उड़ गई थी।

देर तक दोनों के कान बाहर दरवाजे की आहट पर लगे रहे।

बहुत देर बाद बाबा आए, पर अकेले।

"सब जगह ढूंढ लिया। उसके दो-एक दोस्तों को भी सोते से जगाया पर अनि का कुछ पता नहीं चला।"

"अब क्या होगा?' क्या रात भर दादा घर नहीं आएगा। जानती थी, यह सवाल बेमानी है क्योंकि इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। बहुत देर तक जगकर जब नींद सुमी पर हावी हो गई तो उसे पता नहीं चला वह कब सो गई, पर मां-बाबा सुबह तक बिना पलक झपके पड़े रहे। और उस रात अनिमेश घर नहीं लौटा।

सुबह पौ फटते ही बाबा फिर निकल पड़े उसकी खोज में। और कुछ देर बाद लौट आए। अब की उसे साथ लेकर। अनिमेश बुत बना उनके साथ-साथ घर में दाखिल हुआ।

बाबा ने मां को संकेत से मना किया कि उसे कुछ न कहे। बाबा ने बाद में बताया कि अनि शनि मंदिर के पिछवाड़े वाले चबूतरे पर रात भर पड़ा रहा। सुबह होने पर मंदिर के पुजारी को जब पता चला तो उसका हाथ पकड़े वह उसे बाहर सड़क पर ला रहे थे कि सामने बाबा पड़ गए और उसे वापस लिवा लाए।

रात मां-बाबा की वार्ता को सुमी ने बड़े ध्यान से सुना था।

"इसे तो किसी होस्टल में डाल दो।" मां कह रही थी।

"तुम तो जानती हो आनंदी!" अपनी पत्नी आनंदिता को बाबा इसी नाम से संबोधित करते हैं– "होस्टल में बहुत खर्चा आता है।"

"मैं किसी भी तरह घर चला लूंगी। और नहीं तो एक वक्त खा लेंगे, पर अब इस लड़के की हरकतों को और सहा नहीं जाता।"

"ठीक है, मैं पता करूंगा। किसी ठीक-ठाक होस्टल वाले स्कूल के बारे में पता करते हैं।"

बाबू चितरंजन दास ने यह कहकर पत्नी को उस दिन सांत्वना अवश्य दी परंतु यह कैसे संभव हो पाएगा, यह अभी उनकी समझ से बाहर था। चाय बागान में 'सुपरवाइजरी' के एवज में उन्हें कुल तीन हजार रुपये मिलते हैं। आमदनी का और कोई जरिया भी नहीं है। कमर-तोड़ महंगाई। पहले ही मुश्किल से गुजर होती है, फिर होस्टल का खर्चा क्या वह उठा पाएंगे? बाबू चितरंजन दास गहरी सोच में पड़ गए थे। उधर आज की घटना से बिंधे-से यह निर्णय लेने के लिए अपने को तैयार करने में लगे थे कि अनिमेश को होस्टल में डालना अनिवार्य हो गया है।

इस घटना के बाद जिंदगी फिर उसी रफ्तार से चलने लगी थी। एक रोज शहर में एक घटना घटी। आतंकवाद के दौर में यह कोई नई तो न थी पर इसका दूरगामी प्रभाव पड़ा। नगर में कर्फ्यू लगा दिया गया। पहले अड़तालीस घंटे का, जिसे फिर से इतना ही और बढ़ा दिया गया। लोगों को अपने घरों में दुबककर पड़े रहने की मजबूरी को झेलना पड़ा। निर्दोष लोगों की हत्या की त्रासदी और फिर जीवन का इस तरह ठहर जाना भी कोई कम दुखद नहीं। दिन-रात एक ही जगह पड़े रहना– ठहरे हुए पानी की तरह।

सुमी के नन्हे से मस्तिष्क में ढेर सारे सवाल मौजूद थे। वह सोचती, कर्फ्यू के दिनों में लोग कैसे सहमे-सहमे से अपने घरों में दुबके पड़े रहते हैं बिल्कुल उसके सेमल की तरह।

यह सब इतना अचानक हुआ था कि किसी को बाजार से सामान लाने का अवसर नहीं मिल पाया था। घर में मौजूद सामग्री से ही सबको जीवन चलाना था।

चितरंजन बाबू ने उसी दिन अच्छी-खासी खरीदारी करनी थी क्योंकि घर का राशन-पानी, साग-सब्जी सब लेना था। सब बीच में धरा रह गया। जो कुछ घर में मौजूद है, उसी से ही काम चलाना होगा।

सुबह-शाम एक ही तरह की थाली जब परोसी जाने लगी तो अनिमेश, जो खाने में मांस यदि न हो तो खाना नहीं खाता था, उस रोज भी जब उसे दाल-भात ही खाने को मिला तो उसने थाली को पटक दिया और भूखा रहने का ऐलान कर दिया। सुमी ने सुना, मां बाबा से कह रही थी- 'नवाबजादे ने खाना इसलिए पटक दिया है कि रोज-रोज, दाल-भात नहीं खाएंगे। बिना मांस के खाना जनाब के हलक से नीचे नहीं उतरता!' सब कुछ अच्छा-भला चल रहा था कि अनि ने ठहरे हुए पानी में मानो पत्थर मारकर एक हलचल उत्पन्न कर दी थी।

"उसे क्या मालूम नहीं कि शहर में बहत्तर घंटे का कर्फ्यू लगा हुआ है तो मांस कहां से आएगा! जो मिल रहा है, वही क्या कम है। ईश्वर न करे, कल को यह भी नसीब न हुआ, तो!' चितरंजन बाबू का गला भर आया था।

"तो अब आप ही उसे समझाओ न, हमें क्यों दुख दे रहा है! इस स्थिति के क्या हम जिम्मेदार हैं।" -मां कह रही थी। फिर उलाहने भरे स्वर में बोल उठीं- "आप उसे कभी डांटते-फटकारते नहीं न, इसीलिए इतना सिर चढ़ गया है। जब देखो, एक मैं ही उसे टोकती रहती हूं और बुरी बन जाती हूं।" मां का बोलते-बोलते गला भर्रा गया था।

"ठीक है, मैं देखता हूं अब इसकी हिम्मत! खाने की थाली को पटक दिया- यह तो हद है।"

सुमी को बाबा का क्रोध करना अच्छा लग रहा था। वह चाहती थी, आज अनि को खूब डांट पड़े। जिस तरह उसने खाने की थाली को पटका होगा, उसी तरह उसने एक दिन कान से उठाकर सेमल को दीवार पर पटक दिया था। उस निरीह प्राणी का दोष इतना था कि वह अनि के इस्तरी किए हुए कपड़ों पर चढ़कर बैठ गया था, जिससे उसकी पेंट की क्रीज बिगड़ गई थी। इस छोटी-सी बात को लेकर उसने सेमल को इतनी जोर से दे मारा कि कुछ क्षण तक तो वह बेसुध-सा जमीन पर गिरा पड़ा रहा। सुमी डर गई थी, कहीं उसके प्राण-पखेरू न उड़ गए हों। वह तो गनीमत थी, ऐसा कुछ नहीं हुआ।

सुमी ने उसकी क्रूरता और निर्दयता की शिकायत बाबा से की थी- इस उम्मीद में कि बाबा उसे खूब डांटेंगे। इसकी जगह वह बहुत प्यार से उसे समझाने लगे कि ऐसा करना उसके लिए उचित नहीं था। सुमी निराश हो गई थी। उसे पता था अनि पर इसका कोई असर नहीं होने वाला। वह तो एक कान से सुनता है, दूसरे से निकाल देता है।

और आज तो बाबा मां को आश्वस्त करके अनि को डांटने गए हैं। खाने को यों भी भला कोई फेंक देता है! और उधर चितरंजन बाबू गए तो बड़े तपाक से थे परंतु जाने क्यों, अनि के सामने पड़ते ही थोड़ा-बहुत गुस्सा, जो आया था, काफूर हो गया। सुमी और उसकी मां उनसे सदा अपेक्षा करती आई हैं कि उन्हें क्रोध आए। वह अनि को डांटे-डपटे, मारें-धिक्कारें। इसी से शायद उसके व्यवहार में कुछ अंतर आ जाए और आज भी उन्होंने यही किया- "बेटा, खाने का इस तरह निरादर नहीं किया जाता है। अब जब कर्फ्यू लगा हुआ है तो मांस-मछली किधर से आएगा? जो कुछ है, उसी से काम चलाना होगा। समझ गए न! भविष्य में ऐसा मत करना। तुम्हारी मां वैसे ही तुम्हें लेकर बहुत परेशान रहती है। उसे और दुखी मत करना।"

'फूट गई किस्मत मेरी' कहते हुए मां को उन दोनों के बीच आखिर आना ही पड़ा। सुमी मूक दर्शक बनी सब कुछ देखती रही।

"आप उस निकम्मे के आगे इतनी सफाई क्यों दे रहे हैं? जो-जो हरकत यह करता है, उससे आप दुखी नहीं होते क्या? अगर आपको कोई फर्क नहीं पड़ता तो मैं ही क्यों मरूं? खाने की थाली को उठाकर इसने पटक दिया। पूरा खाना नष्ट कर दिया और आप इसकी ताबड़तोड़ पिटाई की जगह पर इसे समझा रहे हैं। खैर, आप जैसे चाहें इसके साथ चलिए। मैंने तय कर लिया है, मैं इसे खाना नहीं दूंगी। रहने दो भूखा। देखती हूं, कब तक रह सकता है!"

सुमी साफ-साफ देख और समझ रही थी कि बाबा को मां के इस निर्णय में कुछ अति महसूस हो रही है। वह दरअसल घर में कलह या नाखुशगवारी नहीं सह सकते इसलिए व्यथित-से लग रहे हैं। परंतु मां का निर्णय अटल होता है, फिर बाबा भी उसे टाल नहीं पाते, यह वह जानती है। और मां ने कड़े शब्दों में आज निर्णय से अवगत करा दिया था। बल्कि कमरे से जाते-जाते यह कहकर गई कि जिस दिन कर्फ्यू खुलेगा और घर में मांस आएगा अनि को फिर भी दाल-भात ही खाना होगा- कम से कम एक दिन के लिए।

सुमी देख रही थी, गर्दन झुकाए हुए अनि चुपचाप खड़ा हुआ अपने दांए पांव के अंगूठे से माटी कुरेद रहा है। लिपाई के कारण माटी खुरच तो नहीं पा रही है, पर सुमी जानती है, जब अनि ऐसा करता है तो कोई क्रोध और विद्रोह का तूफान उसके सीने में पल रहा होता है। वह कब और कहां निकलेगा, किसी को पता नहीं। स्वयं अनिमेश को भी कहां पता रहता है कि वह क्या कर रहा है, क्यों कर रहा है!

जिस बात का डर सुमी को था, आखिर वही घट चुका था। वह रात अनिमेश को भूखे ही गुजारनी पड़ी थी और अगली सुबह सुमी जब सोकर उठी तो देखती है, सेमल का बांस का बनाया घर दूर फेंका पड़ा है और वह गायब है। वह हड़बड़ी में उठकर सब तरफ देखती और पुकारती जा रही थी- 'सेमल, सेमल', मगर सेमल वहां पर हो तो, आए न। रह-रहकर उसका टाट का खाली बिस्तर सुमी को जैसे मुंह चिढ़ा रहा था।

उसने पूरा घर-आंगन छान मारा। सेमल और अनि दोनों की एक साथ अनुपस्थिति उसे किसी भावी दुर्घटना का अशुभ संकेत लगने लगी। दौड़कर उसने मां को रसोईघर में जाकर सूचित किया। मां ने इसे गंभीरता से नहीं लिया- "होगा यहीं कहीं, तू अच्छे से देख।" बिना अपने हाथ के काम से ध्यान हटाए मां ने कहा।

"पर मैंने तो हर जगह, कोना-कोना ढूंढ लिया है"।

'तो फिर कहां जा सकता है?' अबकी मां भी अपनी बेटी के लिए थोड़ा चिंतित हुई। अपने हाथ के काम छोड़कर सेमल की तलाश में लग गई। "यह अनि कहां चला गया है सुबह-सुबह, तुझे पता है कुछ सुमी!"

"नहीं मां, जब मैं उठी तो दादा भी इस घर में नहीं था!" अनिमेश के सोने वाले कमरे की ओर देखकर उसने कहा।

'दाल में जरूर कुछ काला है' -मां मन में उठी आशंका को उस पर प्रकट करके अपनी नन्ही-सी गुड़िया को और दुखी करना नहीं चाहती थी। उसे तो वह सांत्वना ही दे रही थी। "कोई बात नहीं, मिल जाएगा। यहीं-कहीं होगा या फिर अनि उसके साथ खेल रहा होगा।"

मां को दूसरा काम करना था अत: वह तो चली गई पर सुमी सामान्य नहीं हो पा रही थी। वह जड़वत वहीं पर खड़ी रही। चिंता की रेखाएं उसके नन्हें-से गाल पर स्पष्ट उभर आती हैं। कहां होगा उसका सेमल! दादा ने अगर उसे कहीं बाहर छोड़ दिया तो कुकुर, बिल्ली आदि कोई भी जानवर उसे मारकर खा जाएगा। यह विचार आते ही वह भीतर तक सहम गई। उसकी मोटी-मोटी आंखों से आंसूओं की धार निरंतर बहने लगी।

कुछ देर बाद बाबा घर में आए तो सुमी को इस तरह गुमसुम और उदास पाकर पूछा- "यह अपनी सुमी को क्या हो गया है?"

"इसका सेमल घर में मिल नहीं रहा है।" मां ने उन्हें बताया- "आप किस वक्त घर से गए थे। आपको भी कुछ मालूम नहीं है?"

बाबा ने भी इस ओर से अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो सुमी पूरी तरह से निराश हो गई।

"आप गए तो अनि घर में था या आपसे पहले ही घर से बाहर चला गया था!" मां के पूछने पर बाबा ने इस बात से भी अपने को बेखबर बताया- "मैंने ख्याल नहीं किया। क्या वह भी घर में नहीं है?" उन्होंने पूछा।

"यही तो मैं कह रही हूं। अनि घर से गायब है और सेमल भी नहीं मिल रहा। इस बात से क्या समझा जाए? मां के सवाल दागने पर बाबा ने थोड़ा चुहल के अंदाज में कहा- "तो अब इन दोनों की तलाश में ठिंढोरा पीटने के लिए निकलना होगा मुझे।"

"आपको ठिठोली सूझ रही है और उधर देख नहीं रहे हैं, बेचारी सुमी की हालत क्या हो गई है, कैसी गुमसुम हुई पड़ी है? उसके हलक से अन्न तो क्या, जल तक नहीं उतरेगा , जब तक उसे उसका सेमल मिल नहीं जाता।"

"अच्छा!" कहकर बाबू बाहर निकल गए।

काफी समय बाद घर लौटे तो अकेले, मायूस और थके-थके से।

"मुझको तो दोनों में से कोई एक भी नहीं मिला।" कहकर धम्म से खटिया पर पसर गए।

मां ने सुमी का नाश्ता लगाया। परंतु उसने मुंह खोलने तक से मना कर दिया- "इच्छा नहीं है।"

"मिल जाएगा, बिटिया! तुम कुछ खा तो लो।" बाबा ने भी बहुत मनुहार की परंतु सब व्यर्थ। अपनी बेटी को इतना चिंतित और उदास देखकर मां-बाबा दोनों के हलक से भी कुछ नीचे नहीं उतरा।

सुबह से दोपहर होने को आई। तभी अनि नमूदार हुआ। चुपचाप आकर ऐसे बैठ गया, जैसे उसे कुछ भी खबर न हो।

"सेमल कहां है?"

"मां, क्या पता, कहां है?" उसने कहा।

मां को उसका उत्तर माकूल नहीं लगा तो उसने और भी कड़ाई से पूछा- "तू सब जानता है। नहीं पता तो बता, कहां था इतनी देर तक तू?"

"मैं तो सुदीप के घर कैरम खेलने गया हुआ था।"

"कैरम तो तुझे मैं खिलाती हूं।" मां टूटे हुए बांस की छड़ी से उसे ताबड़तोड़ पीटने लगी। "अच्छा सच-सच बता, कहां है सेमल?"

अनि ने चुपचाप मार सहकर भी न ऊफ की और न सच उगला।

बाबा ने आकर बीच-बचाव किया। "अब मार ही डालोगी क्या लड़के को! कहीं गलत जगह लग गया, तो!" वह मां का हाथ रोकने लगे परंतु मां तो चंडी बन गई थी।

इतने शोर-शराबे और हंगामे को सुनकर आस-पड़ोस के कुछ लोग भी जमा होने लगे । सुमी ने अब जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया।

"देख, अपनी बहन की हालत देख।" मां कहती जा रही थी और मारती जा रही थी। "आप बीच में मत आइए।" बाबा को भी मां ने डपट दिया।

"बता, सेमल को कहां छोड़ आया है तू!"

पड़ोस की एक स्त्री मां को हाथ रोकने के लिए कह रही थी "एक जानवर के लिए बेटे को मार डालोगी क्या, बहन?"

'सेमल जानवर है!' यह 'जानवर' शब्द सुमी के हृदय में जैसे गड़ गया। उसे यह अजीब लगता है कि कोई उसके सेमल को जानवर कहे।

तभी पड़ोस का एक लड़का , जो अनि का हमउम्र था, आया। उसने बताया कि अनि ने और उसके बंधु ने मिलकर एक खरगोश को आज सुबह भूनकर खा लिया। सुनते ही सुमी बेसुध-सी हो गई।

उसके सेमल को उसी के अपने भाई ने मारकर खा लिया। कैसे मारा होगा उस नरम नाजुक-से जीव को! अनि उसे अपना भाई नहीं बल्कि एक नृशंस हत्यारा लगता है। एक आतंकवादी। किस चीज का दिल बना है उसका। सुमी को यह बात समझ से परे लगी। इस सदमे के कारण वह बेसुध होकर धम्म से वहीं पर गिर गई।

होश आने पर उसने अपने को बिस्तर में पाया। मां उसकी दोनों हथेलियां मलकर गर्म कर रही थीं और आस-पड़ोस के दो-चार जन उसके बिस्तर के आसपास खड़े, सुमी को निहार रहे थे। उसने देखा, उसके बाबा के हाथ में एक खरगोश है।

वह उससे कह रहे थे- "देखो बिटिया, हम आपके लिए एक दूसरा सेमल ले आए हैं। अब तो खुश हो जाओ।" गुमसुम-सी पड़ी अपनी मोटी-मोटी, पर बुझी हुई आंखों से उसने कभी बाबा को और कभी उनके हाथ में रखे उस खरगोश को देखा, जो दिखने में भले सेमल सरीखा था परंतु उसका सेमल नहीं था। धीरे-धीरे उसकी आंखें मुंदने लगीं और उसने करवट बदल ली। □

मां की तलाश

पृष्ठ 20 से आगे

"हामरा शपत बोलो।"

"विश्वास करो दीदी!"

सामंती ने पांच सौ रुपये मल्ली को दे दिए।

मल्ली ने पूछा- "दीदी, ऊ छेला आपका कोई है?"

सामंती कुछ नहीं बोली। वह लोगों को कैसे समझाए कि वह उसका कोई नहीं है। मल्ली अपने एक साथी के सहयोग से लड़के की अर्थी लेकर चला गया, सामंती के कलेजे का बोझ उतर गया।

कस्बे की व्यस्त जिंदगी ने उस लावारिस नंगू को जल्दी ही भुला दिया।

एक दिन मैं प्लेटफार्म पर बैठा गाड़ी का इंतजार कर रहा था। एक गाड़ी से एक अधेड़ औरत उतरी थी। उसके कपड़े कई दिनों के लगातार पहने हुए थे- मैले। वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। कुछ ठिठकती हुई बोली- "आप यहीं के रहने वाले हैं?"

"हां! क्यों?"

"एक लड़का है, दस-ग्यारह साल का। सुन्न दिमाग का है। न ठीक से बोलता है और न ठीक कुछ समझता है। दंगाइयों ने घर में आग लगा दी थी। उसी में वह जल गया था। तब से वह कपड़े से डरता है। नंगा रहता है। तीन महीने पहले गांव में फिर आतताइयों ने आग लगा दी थी। लड़का तब से घर से भागा हुआ है।"

यह औरत शायद नंगू की मां है।

"मालूम हुआ कि लड़का इस कस्बे में देखा गया है।" औरत बोली।

अब मैं कैसे कहूं कि उस कस्बे में अब वह लड़का नहीं है।

अस्पताल का कंपाउंडर अपनी बीवी के साथ वहीं पर आ खड़ा था। औरत ने पूछा- " क्या आपने उसे इधर कभी नहीं देखा?"

"नहीं! अब उसे खोजना बेकार है। वह अब मिलने का नहीं है।"

वह निराश और थकी-थकी प्लेटफार्म की नंगी जमीन पर ही बैठ गई। घुटने में सिर डाल सिसकने लगी।

कंपाउंडर ने पूछा- "कौन है यह?"

"उस नंगू की मां!" कंपाउंडर की बीवी ने चेहरे पर से नकाब उठाकर उस औरत को देखा और फिर चेहरे को ढक लिया। इसी ने हवा दी थी कि नंगू सामंती का बेटा है और वह डाक्टर गांगुली से फंसी थी। □

बाल पत्रकारिता : सवाल सही सोच का

***हिंदी में बाल पत्रिकाओं के प्रति उपेक्षा भाव कोई नया नहीं है। इस दिशा में शुरू से ही कम उत्साह देखा गया है। जिन कुछेक उत्साही लोगों अथवा औद्योगिक घरानों ने हिंदी में बच्चों के लिए पत्रिकाएं निकालने का बीड़ा उठाया भी, वे भी सदा इसे एक जोखिम का काम मानते रहे क्योंकि शुरू से ही यह माना जाता रहा है कि हिंदी में बाल पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या काफी कम है। इसलिए कमाई की दृष्टि से ये पत्रिकाएं निराश करने वाली होती हैं। इन्हें विज्ञापन नहीं मिलते। यही कारण है कि बाल पत्रिकाओं को गंभीरता से नहीं लिया जाता। इनकी छपाई और प्रचार-प्रसार पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। इसी वजह से कई महत्वपूर्ण बाल पत्रिकाएं बंद भी कर दी गईं। बाल पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति का विवेचन कर रहे हैं* सूर्यनाथ सिंह**

पिछले दिनों जब 'नेशनल रीडरशिप सर्वे 2002' की रिपोर्ट सामने आई तो हिंदी के लोग काफी उत्साहित नजर आए। इस रिपोर्ट के मुताबिक हिंदी पत्रकारिता अंग्रेजी पत्रकारिता को पछाड़कर आगे निकल गई है। इस पर हिंदी अखबारों में काफी कुछ लिखा गया, फीचर प्रकाशित किए गए, लेकिन उस पूरे शोर-गुल में हिंदी में निकलने वाली बाल पत्रिकाओं का कहीं कोई जिक्र न था।

हिंदी में बाल पत्रिकाओं के प्रति यह उपेक्षा भाव कोई नया नहीं है। इन्हें लेकर शुरू से ही कम उत्साह देखा गया है। जिन कुछेक उत्साही लोगों अथवा औद्योगिक घरानों ने हिंदी में बच्चों के लिए पत्रिकाएं निकालने का बीड़ा उठाया भी, वे भी सदा इसे एक आर्थिक जोखिम का काम मानते रहे क्योंकि शुरू से ही यह माना जाता रहा है कि हिंदी में बाल पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या काफी कम है। इसलिए कमाई की दृष्टि से ये पत्रिकाएं निराश करने वाली होती हैं। इन्हें विज्ञापन नहीं मिलते। यही कारण है कि बाल पत्रिकाओं को गंभीरता से नहीं लिया जाता। इनकी छपाई और प्रचार-प्रसार पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। यही वजह है कि कई महत्वपूर्ण बाल पत्रिकाएं बंद भी कर दी गईं।

लेकिन सवाल यह उठता है कि हिंदी बाल पत्रिकाओं की पाठक संख्या कम होने के पीछे क्या सिर्फ पाठक समुदाय की उदासीनता ही एकमात्र कारण है? यदि ऐसा होता तो यह बात पूरे हिंदी बाल साहित्य पर भी लागू होती। माना कि अंग्रेजी की पुस्तकों और पत्रिकाओं के खरीददार और पाठक अधिक हैं, उनकी क्रयशक्ति हिंदी पाठकों से अच्छी है, लेकिन हिंदी का बाल साहित्य भी बुरी स्थिति में नहीं है। हिंदी बाल कहानियों और कविताओं की मोटी-मोटी और महंगी पुस्तकें भी आज काफी अच्छी संख्या में बिक रही हैं और इनके प्रकाशक उनसे लाभ भी कमा रहे हैं। फिर बाल पत्रिकाओं के पाठक कम क्यों हैं? क्या कभी इस बात को जानने के लिए किसी बाल पत्रिका के संपादक या प्रकाशक ने बच्चों के बीच जाकर बातचीत करने की कोशिश की? कभी कोई सर्वेक्षण कराया? बदलती स्थितियों में बच्चों के मन को टटोलने की कोशिश की? आपके बच्चे एक पत्रिका से क्या चाहते हैं, यह जानने की कोशिश की ? शायद नहीं।

सर्वेक्षणों के आधार पर देखें तो आज स्थिति यह है कि समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के कुल पाठकों में तीस प्रतिशत हिस्सा किशोर हो रहे या हो चुके बच्चों का है। फिर हम किस आधार पर कह सकते हैं कि हिंदी में बाल पाठकों की संख्या कम है? हिंदी में बाल पाठकों की संख्या कम नहीं है, बाल पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या कम है।

अब सवाल यह उठता है कि ऐसा क्यों? और यही वह मुख्य सवाल है, जिससे बाल पत्रिकाओं के प्रकाशक, संपादक जूझना नहीं चाहते अथवा आंख चुराते हैं।

दरअसल हिंदी की अधिकांश बाल पत्रकारिता आज भी चालीस-पचास साल पुराने बने-बनाए फार्मूले पर चल रही है। वहां न तो पाठकों के आयु वर्ग का कोई स्पष्ट विभाजन है न ही बच्चों की जरूरतों को जानने-समझने का जरिया। और सबसे बड़ी दुर्भाग्य की बात तो यह है कि बाल पत्रकारिता को आज भी मुख्य पत्रकारिता से बाहर की चीज माना जाता है। राजनीतिक पत्रकारिता, सांस्कृतिक पत्रकारिता, खेल पत्रकारिता– यहां तक कि फिल्म पत्रकारिता को भी महत्वपूर्ण माना जाता है, इसके लिए विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है। लेकिन बाल पत्रकारिता को हाशिए पर रख दिया जाता है और यह माना जाता है कि इसके लिए विशेषज्ञता की कोई आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि अधिकांश अखबारों के बच्चों वाले पृष्ठ सबसे कनिष्ठ उप-संपादकों के हवाले कर दिए जाते हैं और वे बनी-बनाई पुरानी परंपरा में बच्चों की सामग्री ढालकर परोस देते हैं। यही नहीं, नियमित रूप से निकलने वाली अधिकांश बाल पत्रिकाओं में भी लगभग यही स्थिति है। जिन एकाध पत्रिकाओं के संपादक बाल साहित्य से जुड़े भी हैं, उनकी दृष्टि भी चालीस-पचास साल पुरानी परंपरा की बाड़ से बाहर नहीं निकल पाती। उनमें कोई नयापन नहीं है।

हिंदी की समूची बाल पत्रकारिता गोल-मोल है। बच्चों की उम्र और आवश्यकताओं के आधार पर उनमें कोई ठीक-ठीक विभाजन नहीं है। यही कारण

है कि चार से लेकर सोलह वर्ष के आयु वर्ग को एक ही जगह समेटने की कोशिश दिखाई देती है और समझा यह जाता है कि इस पूरे आयु वर्ग की आवश्यकता मुख्य रूप से मनोरंजन है। यही कारण है कि आज हिंदी में जो भी बाल पत्रिकाएं उपलब्ध हैं, उनमें से अधिकांश में मुख्य रूप से कहानियां, कविताएं, चुटकुले और चित्रकथाएं प्रकाशित की जाती हैं। चाहे वह *नंदन* हो, *बाल हंस* हो, *बाल भारती* हो या इसी तरह की दूसरी अनेक बाल पत्रिकाएं– सबका स्वरूप लगभग एक-सा है। अगर ये खुद को एक-दूसरे से भिन्न करने का प्रयास भी करती दिखती हैं तो सिर्फ कथाओं की विषयवस्तु के आधार पर। कोई राजा-रानी की कहानियां, परी कथाएं तो कोई आधुनिक कहानियां, या विज्ञान कथाएं प्रकाशित करके खुद को अलग करने की कोशिश करती हैं और वे इसी पर ज्यादा बहस करती, उलझती नजर आती हैं। कई संपादक तो कथाओं की विषयवस्तु पर बहस करके ही बाल साहित्य के इतिहास में नया कीर्तिमान स्थापित करने पर तुले हुए हैं।

दिल्ली प्रेस से बच्चों के लिए दो पत्रिकाएं निकलती हैं– *चंपक* और *सुमन सौरभ*; *चंपक* छोटे बच्चों के लिए और *सुमन सौरभ* किशोरों के लिए है। लेकिन *चंपक* जानवरों की कहानियों से बाहर नहीं निकल पाती और *सुमन सौरभ* विज्ञान से मुक्त नहीं हो पाती। इसमें मुख्य रूप से कहानियों पर ही अधिक बल होता है।

इन सभी पत्रिकाओं का अपना-अपना बनाया 'फॉरमेट' है– जो शुरू से लेकर आज तक चला आ रहा है। एक ही तरह की कहानियां, एक ही तरह की कविताएं, यहां तक कि एक ही तरह का 'ले-आउट' और एक ही ढंग के चित्र शुरू से लेकर आज तक प्रकाशित होते चले आ रहे हैं। चाहे वह *नंदन* हो या *चंपक*, पचास साल से इनकी कहानियों की विषयवस्तु, इनकी प्रस्तुति, इनका 'ले-आउट', इनके चित्र एक ही तरह के चले आ रहे हैं।

अब ऐसी स्थिति में सिर्फ पाठकों के मत्थे सारा दोष मढ़कर बैठ जाना भला कितना उचित है? बच्चे को एक हफ्ते तक लगातार एक ही कपड़ा पहनाते रहिए, एक ही तरह का भोजन देते रहिए, एक ही विषय की पुस्तक पढ़ते रहने को कहिए– देखिए, विद्रोह कर बैठेगा। उसे हर रोज नया चाहिए। हर पल नया चाहिए। ऐसे में आप पचास साल से एक ही तरह की सामग्री उसे देते चले आ रहे हैं और आरोप लगाते हैं कि हिंदी के बच्चे पत्रिकाएं नहीं पढ़ते।

बच्चे में हर पल नई-नई बातें सीखने-देखने की ललक होती है। वह बहुत जल्दी पुरानी चीजों से ऊब जाता है। और आज विज्ञान ने पूरी दुनिया की रफ्तार तेज कर दी है, हर पल कुछ न कुछ नया करने की होड़ मची हुई है। सूचना क्रांति के चलते पूरी दुनिया सूचना पर आधारित होती जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं, नई-नई तकनीकों का प्रयोग बढ़ रहा है। आपके बच्चे के सामने टेलीविजन और इंटरनेट पर दुनिया भर का विस्तार है। बाजार की चकाचौंध है। शिक्षा और ज्ञान भी बाजार के फार्मूले पर तैयार किया जाने लगा है। ऐसे में यदि हिंदी की बाल पत्रिकाएं पचास साल पुरानी परंपरा का निर्वाह करते हुए बच्चों के सामने आकर खड़ी होती हैं और नकारी जाती हैं तो इसमें पाठकों का दोष नहीं, संपादकों-प्रकाशकों का दोष अधिक है।

आज का बच्चा चालीस-पचास साल पुराने बच्चे की तरह एकांत कमरे में बैठा किताबों में उलझा, सिर्फ पढ़ाकू बच्चा नहीं है। वह हर क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार बच्चा है। उसमें अकूत रचनात्मकता है। वह अपने आसपास की दुनिया को गौर से देखने और उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाला बच्चा है। दुनिया में क्या नया हो रहा है, उसे जानने को भूखा बच्चा है। वह अपनी जिज्ञासाओं का तुरंत समाधान चाहता है और उसकी जिज्ञासाएं सिर्फ किताबी नहीं हैं।

आज के अभिभावक पहले के अभिभावकों की तरह नहीं हैं। वे आज के प्रतियोगिता के युग में बच्चे के साथ खुद भी दौड़ में शामिल हैं। खुद मक्के की रोटी खाकर बड़े हुए अभिभावक भी अब अपने बच्चे को अगली कतार में देखने के लिए अधिक से अधिक पैसा खर्च करने को तैयार हैं। हां, ऐसे में यह जरूर हुआ है कि अंग्रेजी और विदेशी के प्रति मोह बढ़ा है। लेकिन हिंदी को बिल्कुल नकार दिया गया है, ऐसा भी नहीं है। आज भी एक ऐसा बड़ा वर्ग है जो अंग्रेजी की पहुंच से दूर है। हिंदी पढ़ता है और हिंदी माध्यम से पढ़ता है। इसके अलावा अंग्रेजी वाले तबके में भी काफी ऐसे लोग हैं, जो हिंदी के महत्व को समझते हैं और अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी भी पढ़ना चाहते हैं। लेकिन जब हिंदी में अंग्रेजी के स्तर की चीजें उन्हें नहीं मिलतीं तो वे निराश होते हैं।

आज बच्चों की आवश्यकताओं, रचनात्मक क्षमता और सक्रियता को ध्यान में रखते हुए उनके पाठ्यक्रमों को अधिक से अधिक व्यावहारिक बनाने पर जोर दिया जा रहा है और अधिकांश पाठ्यक्रमों का स्वरूप बदला भी है, किंतु बाल पत्रिकाएं इस दिशा में निष्क्रिय हैं। आज हिंदी की बाल पत्रिकाओं को अपने कलेवर, विषयवस्तु और प्रस्तुति को लेकर नए सिरे से विचार करने की जरूरत है। आज सबसे बड़ी आवश्यकता है कि पत्रिकाएं बच्चों को सिर्फ ज्ञान, आनंद और नैतिकता न दें, बल्कि उन्हें अपने साथ रचनात्मक रूप से सहभागी बनाएं। हिंदी में बच्चों की सहभागिता को बढ़ाना आज बाल पत्रिकाओं के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है।

स्वयंसेवी संगठन 'एकलव्य' ने अपनी बाल पत्रिका *चकमक* के माध्यम से इस दिशा में काफी सराहनीय प्रयास किए हैं। लेकिन यह पत्रिका सिर्फ विज्ञान में रुचि रखने वाले या विज्ञान की पढ़ाई करने वाले बच्चों को ही अपना सहभागी बना पाती है। जबकि सच्चाई यह है कि हर बच्चे में कोई न कोई रचनात्मकता होती है। कोई कविता लिख सकता है, तो कोई कहानी, कोई लेख, कोई रिपोर्ट लिख सकता है तो कोई इंटरव्यू अच्छा कर सकता है कोई चित्र बना सकता है, कोई मूर्ति बना सकता है, कोई वाद-विवाद का चैंपियन है तो कोई संगीत में माहिर, कोई गणित में तेज है तो कोई खेल में। इसी तरह के बच्चों की रचनात्मकता का एक विस्तृत क्षेत्र है।

बच्चे की समग्र रचनात्मकता को एक मंच मिलना चाहिए और यह काम बाल पत्रिकाएं कर सकती हैं लेकिन कर नहीं रहीं। आज भी इन बाल पत्रिकाओं में 'रंग भरो', 'चित्र बनाओ', 'वर्ग पहेली', 'गलतियां ढूंढो' अथवा अधिक से अधिक 'दिए गए विषय पर कहानी लिखो' प्रतियोगिताओं के अलावा और कोई रचनात्मक सहभागिता के प्रयास नहीं दिखते। अब ये चीजें बच्चों को आकर्षित नहीं करतीं। आज का बच्चा अपनी नई से नई रचनात्मकता के साथ सहभागिता चाहता है। वह कहानियों, कविताओं के साथ-साथ दुनिया भर की सूचनाओं का भी भूखा है। ऐसे में उसे एक ऐसी पत्रिका अथवा अखबार की आवश्यकता है जो सिर्फ उसी की हो, उसी के लिए हो और काफी हद तक उसके द्वारा भी बनाई गई हो।

आज से दो साल पहले (सन 2000 में) *हिंदुस्तान टाइम्स* समूह ने हिंदी में *स्कूल टाइम्स* नाम से बच्चों के लिए एक साप्ताहिक पत्र की शुरूआत की थी। वह पत्र काफी हद तक बच्चों की आज की आवश्यकताओं पर खरा उतरा था। उसमें बच्चों की रुचि के और बच्चों के समाचार तो होते ही थे, उनके पाठ्यक्रम को

पृष्ठ 38 पर जारी

बाल साहित्य का वर्तमान परिदृश्य

हिंदी बाल साहित्य में धीरे-धीरे यह एक सुखद स्थिति बन रही है कि हर वर्ष बड़ी संख्या में बच्चों के लिए विविध विषयों पर विविध विधाओं में रंगबिरंगी पुस्तकें छपकर सामने आ रही हैं। उनका भरपूर नोटिस भी लिया जा रहा है। प्रकाशन की नई तकनीक तथा प्रकाशकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन के चलते कुछ पुस्तकों की साज-सज्जा भी उत्कृष्ट दिखने लगी है। पर मूलभूत समस्याएं आज भी जहां की तहां हैं। विषयवस्तु में नयापन, यथार्थ से सामंजस्य, अन्य भाषाओं से अनुवाद, पुस्तकों की कीमत और उन्हें बाल पाठकों तक पहुंचाना अभी तक समस्या बना हुआ है। इस समस्या का समाधान लेखक-प्रकाशक-पाठक समुदाय के बीच एक सतत और गंभीर आत्मचिंतन की मांग करता है। दुनिया जिस तेजी से बदल रही है उतनी ही तेजी से बच्चों का परिवेश भी बदल रहा है। पठन-पाठन की रुचियों पर पुस्तकों की जगह इतर माध्यमों का दबाव बढ़ रहा है जिससे स्थिति और उलझ गई है। इसके बावजूद बाल पुस्तकों का भंडार बढ़ा ही है। पिछले दिनों प्रकाशित बाल पुस्तकों की चर्चा कर रहे हैं **रमेश तैलंग**

हिंदी बाल साहित्य में धीरे-धीरे यह एक सुखद स्थिति बन रही है कि हर वर्ष बड़ी संख्या में बच्चों के लिए विविध विषयों पर विविध विधाओं में रंगबिरंगी पुस्तकें छपकर सामने आ रही हैं और समय-समय पर आयोजित पुस्तक मेलों आदि में उनका भरपूर नोटिस भी लिया जा रहा है। प्रकाशन की नई तकनीक के आगमन तथा प्रकाशकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन के चलते कुछ पुस्तकों की साज-सज्जा तो आयातित अंग्रेजी पुस्तकों की तरह ही उत्कृष्ट दिखने लगी है। पर मूलभूत समस्याएं आज भी वहीं की वहीं हैं, जहां वे पहले थीं। जैसे- पुस्तकों की विषय-वस्तु में नएपन के साथ-साथ यथार्थ से सामंजस्य स्थापित करने की समस्या, हिंदीतर भाषाओं से हिंदी में अनुवाद की समस्या, पुस्तकों की कीमत की समस्या, और प्रकाशित पुस्तकों के बाल पाठकों तक पहुंचने की समस्या। जाहिर है, इन सभी समस्याओं का समाधान लेखक-प्रकाशक-पाठक समुदाय के बीच एक सतत और गंभीर आत्मचिंतन की मांग करता है।

दुनिया जिस तेजी से बदल रही है, उतनी ही तेजी से बच्चों का परिवेश भी बदल रहा है। पठन-पाठन की रुचियों पर पुस्तकों की जगह इतर माध्यमों का दबाव बढ़ रहा है जिससे स्थिति और उलझ गई है। पर इस सबके बावजूद बाल पुस्तकों का भंडार कम नहीं हुआ है, उल्टे बढ़ा ही है।

पिछले दो-तीन वर्षों में प्रकाशित जिन बाल पुस्तकों तक मेरी सहज पहुंच हो सकी है उनमें सबसे पहले मैं *प्रेमचंद : बाल साहित्य समग्र* (प्रकाशक : मेधा बुक्स, दिल्ली, मूल्य : 400 रुपये) का जिक्र करना चाहूंगा। डबल क्राउन आकार के लगभग 300 पृष्ठों में सिमटी इस सजिल्द पुस्तक को संपादित किया है प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ कमल किशोर गोयनका ने। हालांकि यह पुस्तक प्रेमचंद साहित्य के शोधार्थियों के लिए ज्यादा उपयुक्त है और मूल्य की अधिकता के कारण आम बच्चों की पहुंच से भी बाहर है पर पुस्तकालयों के जरिए बच्चे इसमें संकलित रचना सामग्री का भरपूर आनंद ले सकते हैं।

प्रेमचंद ने वयस्कों के लिए तो विपुल साहित्य लिखा ही, पर बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने में भी वह नहीं चूके। पशु-पक्षियों को चरित्र बनाकर उन्होंने न केवल सुंदर यथार्थपूर्ण बाल कहानियां लिखीं बल्कि अनेक महापुरुषों की जीवनियों को भी बच्चों की बोधगम्य भाषा में लिखा। 'जंगल की कहानियां' उपशीर्षक के अंतर्गत प्रेमचंद की एक बड़ी कहानी ('कुत्ते की कहानी') और बारह छोटी बाल कहानियां हैं। यहां यह बात कम चकित नहीं करती कि उनकी बाल कहानियों में 'पंच परमेश्वर', 'ठाकुर का कुंआ', 'ईदगाह', 'बड़े भाई साहब' जैसी चर्चित कहानियां, जिन्हें बच्चों के पाठ्यक्रमों में स्थान दिया जाता रहा है, शामिल नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि संपादक या स्वयं प्रेमचंद ने इन कहानियों को बाल साहित्य की श्रेणी में रखना उपयुक्त नहीं समझा।

'कुत्ते की कहानी' प्रेमचंद की यादगार बाल कहानी है। मैं नहीं जानता, एक कुत्ते की जिंदगी को लेकर आत्मकथात्मक शैली में इतनी मार्मिक और यथार्थपूर्ण कहानी किसी और लेखक ने बच्चों के लिए लिखी हो। भाड़ की राख में अपने तीन भाइयों के साथ जन्मे कल्लू नाम के एक कुत्ते की जिंदगी में अनेक रोचक घटनाओं के साथ कैसे-कैसे मोड़ आते हैं और अलग-अलग स्थितियों में मनुष्य उसके साथ किस तरह का व्यवहार करता है, इस कहानी को पढ़कर ही जाना जा सकता है। चूंकि यह कहानी आम बाल कहानियों से ज्यादा बड़ी है इसलिए कुछ लेखक-पाठक इसे बाल उपन्यास की भी संज्ञा दे सकते हैं। हालांकि व्यक्तिगत रूप से उपन्यास को मैं बच्चों से कहीं ज्यादा किशोरों की मानसिक क्षमता के अनुकूल विधा मानता हूं पर बाल उपन्यास के नाम पर हर वर्ष इक्की-दुक्की पुस्तकें प्रकाशित होती ही रहती हैं। इस विवादास्पद विषय पर लेखकों-पाठकों का ध्यान इसलिए भी नहीं जाता क्योंकि किशोर साहित्य को प्रायः बाल साहित्य के अंदर ही सम्मिलित किया जाता रहा है और किशोर साहित्य की अभी तक कोई अलग से पहचान हिंदी में नहीं बन सकी है।

'कुत्ते की कहानी' के अलावा जिन बारह बाल कहानियों का मैंने ऊपर जिक्र किया, वे भी पशु-पक्षियों से ही संबंधित हैं। बाल कहानियों में किस्सागोई के कौशल के बाद सबसे महत्वपूर्ण तत्व उत्सुकता का भाव होता है, यानी- आगे क्या होने वाला है? प्रेमचंद की ये बाल कहानियां सीधे-सीधे रहस्यात्मकता से जुड़ी न होने पर रोमांचित अवश्य करती हैं। ज्यादातर कहानियों में लेखक के निजी अनुभव हैं पर सबसे बड़ी बात यह है कि हर कहानी की एक तार्किक परिणति है, कहीं कोई चमत्कार नहीं, कहीं कोई कल्पना का अतिरेक नहीं। एक-दो मिसालें देना ही यहां काफी होगा।

पहली कहानी 'शेर और लड़का' का कथानायक एक चरवाहा लड़का है जो जंगल में अपने मालिक की गाय-भैंसों को चराता है। एक दिन उसे पता चलता है कि उसके पशुओं में एक गाय कम है। मालिक की डांट से डरता हुआ वह बाकी पशुओं को मालिक के यहां छोड़कर, चुपचाप वापस जंगल में गाय को ढूंढने के लिए निकल पड़ता है। अंधेरे में गाय को ढूंढते-ढूंढते थककर वह एक पेड़ पर आश्रय ले लेता है। नींद के आगोश में अचानक उसे महसूस होता है कि पेड़ बुरी तरह हिल रहा है। नीचे नजर जाते ही उसके होश उड़ जाते हैं। वहां एक शेर दहाड़ मारते हुए उछल-उछलकर उसे पकड़ने की कोशिश कर रहा होता है। सारी रात न शेर वहां से टलता है और न वह लड़का पेड़ से नीचे उतर पाता है। भूखा-प्यासा, थका-हारा वह लड़का, आखिर सुबह होते ही अपनी सूझ-बूझ से काम लेता है और पेड़ की फुनगी पर चढ़कर अपनी धोती को हवा में इस आशा में लहराता है कि शायद जंगल में किसी शिकारी की नजर उस पर पड़ जाए। उसकी तरकीब कामयाब होती है। तीन-चार शिकारी वहां आ जाते हैं और लड़के के यह बताने पर कि उसके आस-पास शेर है, शेर को बंदूक से मारकर लड़के को बचाने में सफल होते हैं। बाद में लड़के को मालिक से पता चलता है कि उसकी खोई हुई गाय तो उसी रात वापस घर आ गई थी।

'सांप की मणि' और 'मगर का शिकार' भी कम रोचक कहानियां नहीं हैं। 'सांप की मणि' कहानी में लेखक को अपनी कोलंबो यात्रा के दौरान अपने एक दोस्त से पता चलता है कि सांप की हजारों किस्में होती हैं मगर मणि सिर्फ एक ही तरह के सांपों के पास होती है जिन्हें 'कालिया सांप' कहते हैं। इनमें भी मणि किसी-किसी के ही पास होती है। वह भी उसके सिर पर नहीं, बल्कि मुंह के अंदर। लेखक को यह मणि किस तरह प्राप्त होती है, यही इस कहानी का विषय है। मणि का रहस्य यह है कि यह एक तरह का पत्थर है, जो अंधेरे में गर्म होकर चमकता है। दिन के समय कालिया सांप इसे मुंह के अंदर रखे रहता है और रात के अंधेरे में बाहर निकालकर उसके प्रकाश में कीड़ों-मकोड़ों को खाता है। 'मगर का शिकार' कहानी में कुछ मछुए एक बकरी के बच्चे को चारे की तरह इस्तेमाल करके मगर का शिकार किस चतुराई से करते हैं, इसे बताया गया है। कहा जाता है कि मगर जिस रास्ते से आता है, उसी रास्ते से जाता है और यही जानकारी मछुओं को मगर का शिकार आसानी से करने में सहायता करती है। कुछ और अच्छी कहानियों में 'गुब्बारे पर चीता', 'मिट्टू', 'जुड़वां भाई' आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

पुस्तक का दूसरा हिस्सा प्रेमचंद द्वारा महापुरुषों के जीवन पर लिखे बाल साहित्य का है जिसमें- महात्मा शेख सादी, भगवान राम, वीर दुर्गादास के अलावा महाराणा प्रताप, अकबर महान, नेपाल के राणा जंग बहादुर, गोपाल कृष्ण गोखले, गेरीबाल्डी, मौलाना वहीदुद्दीन 'सलीम', डा. सर रामकृष्ण भांडारकर, बदरुद्दीन तैयब जी, सर सैयद अहमद खां, मौलाना अब्दुल हलीम 'शरर' और चित्रकार जोशुआ रेनाल्ड्स जैसी नामी-गिरामी शख्सियतों के जीवन चरित्र शामिल हैं। *राम चर्चा* के बारे में तो संपादक का दावा है कि भगवान राम की बाल जीवनी लिखने वाले प्रेमचंद पहले लेखक थे।

बाल कहानियों की शृंखला में इधर कई और छोटी-बड़ी नई पुस्तकें प्रकाशित होकर सामने आई हैं। बड़ी और थोड़ी महंगी किताबों में भगवती शरण मिश्र की *मेरी इक्यावन बाल कहानियां*, क्षमा शर्मा की *इक्यावन बाल कहानियां*, प्रकाश मनु की *इक्यावन बाल कहानियां* (सभी के प्रकाशक : आत्माराम एंड संस, दिल्ली, मूल्य : क्रमशः 275, 160 और 275 रुपये) देवेंद्र कुमार की - *मेरी इक्यावन बाल कहानियां* (सुयोग्य प्रकाशन, नई दिल्ली; मूल्य : 250 रुपये), दिनेश चमोला की *प्रतिनिधि बाल कहानियां* व *श्रेष्ठ बाल कहानियां*, मुकेश नादान की *शिक्षाप्रद बाल कहानियां*, उषा यादव एवं राजकिशोर सिंह द्वारा संपादित *हिंदी की श्रेष्ठ बाल कहानियां* (सभी के प्रकाशक : आत्माराम एंड संस, दिल्ली, मूल्य : क्रमशः 300, 350, 100 और 275 रुपये) और प्रकाश मनु की *नंदू भैया की पतंगें* (प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली; मूल्य 50 रुपये) प्रमुख हैं। इनके अलावा वीरेंद्र जैन की *हास्य कथा बतीसी* (आत्माराम एंड संस, दिल्ली, मूल्य 135 रुपये) भी उल्लेखनीय है।

छोटी और कम कीमत की किताबों में यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की *टिड्डी पुराण*, श्री प्रसाद की *फ्लोरेंस नाइटिंगेल*, सुनीता कालरा की *मेहनत का फल मीठा होता है*, सुरेखा पाणंदीकर की *तीसरी लड़की*, ब्रजभूषण की *बच्चों में एक बच्चा*, हरिकृष्ण देवसरे की *खरबूजे ने बदला रंग* जगजीत सिंह की *नन्ही शिक्षिका* (सभी के प्रकाशक : वैभवशाली, नवीन शाहदरा, दिल्ली, मूल्य : 25 रुपये, 12 रुपये) और उषा यादव की *सबक* के नाम लिए जा सकते हैं।

इन कहानी संग्रहों पर समग्र नजर डालें तो मिश्रित प्रतिक्रिया होती है। बहुत-सी कहानियां जहां अपने सुरुचिपूर्ण आधुनिक कथ्य, मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता और सुगठित शिल्प के बल पर अनेक संभावनाएं जगाती हैं, वहीं कुछ कहानियां अपने पुराने ढंग के कमजोर कथ्य और लचर प्रस्तुति के कारण निराश भी करती हैं। एक और प्रश्न, जो मेरे मन में लगातार सुगबुगाता है, वह यह है कि बच्चों के साथ आज जो बहुरूपी अनाचार हो रहा है- चाहे वह मारपीट, अपहरण, दुष्कर्म के रूप में हो या फिर अशिक्षा, अंधविश्वास, बाल मजदूरी, भिक्षावृत्ति, मनोरोगों के रूप में- उसका सामना करने का आत्मबल देने वाली कहानियां क्यों नहीं लिखी जा रही हैं? क्या कारण है कि प्रतिष्ठित बाल कथा लेखक अभी भी दानवों, राक्षसों, राजा-रानियों, परियों, देवी-देवताओं, की काल्पनिक एवं चमत्कारिक गुंजलक से बाहर आने का वैसा साहस नहीं कर रहे हैं, जैसा उन्हें करना चाहिए? पारंपरिकता और आधुनिकता का संतुलन बाल कहानियों में अभी भी बुरी तरह से गड़बड़ाया है। वैज्ञानिक और स्वस्थ हास्य बाल कहानियों का तो लगभग अकाल ही है और इस क्षेत्र में अपवादस्वरूप देवेंद्र मेवाड़ी, शुकदेव प्रसाद, गुणाकर मुले और वीरेंद्र जैन जैसे कुछ लेखक ही रचनारत हैं।

भगवतीशरण मिश्र की *इक्यावन कहानियां* में यों तो ज्यादातर कहानियां राजा-महाराजाओं, परियों तथा पौराणिक चरित्रों को लेकर लिखी गई हैं पर कुछ उनसे अलग हटकर भी हैं। जैसे- 'बिना विचारे जो करे', 'जूतों की बौछार', 'दिन का भूला', 'लौट के बुद्धू घर को आए', 'आया एक पोस्टकार्ड', 'गंजा बिल्लू', 'फूल खिले : सपने जगे' आदि। 'जूतों की बौछार' में सुषमा नाम की एक लड़की उससे विवाह करने आए एक ऐसे वृद्ध को, जो पहले दस-बारह शादी कर चुका है, अपने ढंग से सबक सिखाती है और 'फूल खिले : सपने जगे' कहानी को सबसे बड़ी सीख है- 'प्रसन्न रहना ही असली जीवन है'।

क्षमा शर्मा सामान्यतः आधुनिक सोच वाली बाल कथा लेखिका हैं पर अपनी *इक्यावन बाल कहानियां* संग्रह में न जाने क्यों वह भी पारंपरिक ढर्रे की राजा-रानी वाली कहानियों को सम्मिलित करने का मोह संवरण नहीं कर सकी हैं। उनकी कुछ कहानियों ('नन्हा संगीतकार', 'बेचारी लड़की', 'जॉन हेनरी', 'जादुई कोट'

आदि) में विदेशी लोककथाओं की झलक दिखती है तो कहानियां रचनात्मक धैर्य के अभाव में अच्छी शुरूआत के बावजूद अंत में कमजोर हो जाती हैं। फिर भी उनकी आधुनिक परिवेश की अच्छी बाल कहानियों में 'शिब्बू पहलवान', 'छोटी बहन', 'नया घर', 'पेड़ पर झंडियां', 'भेड़िया आया', 'शेर का पता' और 'शेरा' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

प्रकाश मनु के दो बाल कहानी संग्रह लगभग एक साथ आए हैं- *इक्यावन बाल कहानियां* और *नंदू भैया की पतंगें*। *इक्यावन बाल कहानियां* संग्रह में 'चुनमुन की कहानियां', 'तितली का घर', 'चींटी ने कहा', 'दोस्ती का हाथ' और 'आजादी अनमोल' बच्चों को अवश्य पसंद आनी चाहिए। *नंदू भैया की पतंगें* तेरह कहानियों का संग्रह है जिसमें कहीं बच्चों की सामूहिक शैतानियां हैं, तो कहीं उन शैतानियों के कारण दादी-चाची से तकरार और सुलह, कहीं पढ़ाई की चाह है तो कहीं कलाकार बनने की खुशी, कहीं मां के प्यार की स्मृति है, तो कहीं खरगोशों की दोस्ती। मतलब यह कि हर कहानी का अपना अलग रंग और अलग ढंग।

देवेंद्र कुमार लंबे समय से बाल कहानियां लिख रहे हैं और उनके कई बाल कथा संग्रह पहले भी प्रकाशित हो चुके हैं पर उनकी इक्यावन कहानियों का इतना बड़ा संग्रह पहली बार सामने आया है। देवेंद्र कुमार की बाल कहानियां सिर्फ पढ़ने के साथ खत्म नहीं होतीं, बल्कि उन कहानियों की ध्वनि पढ़ने के बाद अंतर में गूंजती रहती है। वह जीवन के छोटे-से-छोटे प्रसंगों से कहानियां बुनते हैं और उनमें गहरा अर्थ छोड़ते हैं। 'मेरा-तेरा बचपन', 'दूध का उफान' उनकी यादगार कहानियां हैं। 'मेरा-तेरा बचपन' कहानी का एक पात्र बाबा है, जो अमित नाम के एक लड़के के उन पुराने टूटे-फूटे खिलौनों को, जिन्हें बेकार समझकर वह फेंकने वाला था, उठाकर अपने पास ले आते हैं और अपने बचपन के स्मृतिचिह्नों के साथ रख लेते हैं। जब अमित को यह पता चलता है और बाबा से उसकी बातचीत होती है तो बाबा अपने बहुत पुराने नौकर रामदीन को, जिसने उन्हें बचपन में पाला था, याद करते हुए अमित से एक बहुत ही मार्मिक बात कहते हैं- 'हम बड़े होकर अपना बचपन भूल जाते हैं। मैं भी भूल गया था। लेकिन रामदीन ने मेरे बचपन को संजोकर रखा था। बड़े होकर मेरी बात को भूल मत जाना।'

जीवन के एक अनूठे सत्य से परिचय कराती यह बाल कहानी अपने छोटे से कथ्य के बावजूद एक बहुत बड़ी कहानी है। इसी तरह 'दूध का उफान' कहानी में सुबह पांच बजे से रात के बारह-एक बजे तक घर के कामों में लगे रहने वाले रामू नाम के उस नौकर की मानवीय व्यथा है जिसकी दिन में जरा-सी नींद के कारण चूल्हे पर चढ़ा ढेर सारा दूध उफनकर बह जाता है और उसे काम से निकाले जाने की नौबत आ जाती है। भला हो घर के मालिक रमेश दत्त का, जो रामू की वास्तविक व्यथा को समझते हुए अपनी गुस्सैल पत्नी को शांत करते हैं और तनाव भरे माहौल को खुशनुमा बना देते हैं। 'चिड़िया का सच' एक ऐसी बाल कहानी है जो आज की चाटुकार व्यवस्था पर गहरा व्यंग्य करती है। विदेशी मूलकथाओं पर आधारित 'आखिरी दौड़', 'आजादी बच गई' और 'पशु सेना' जैसी अपवाद कहानियों को छोड़ दें तो देवेंद्र कुमार के इस संग्रह में 'रिक्शे वाला डाक्टर', 'अध्यापक', 'रंगशाला' जैसी और कई देसी अंदाज वाली कहानियां हैं जो उन्हें आज के विशिष्ट बाल कथाकारों की श्रेणी में रखती हैं।

दिनेश चमोला सबसे ज्यादा छपने वाले बाल कथाकारों में से हैं और उनके दो वृहद बाल कहानी संग्रह- *श्रेष्ठ बाल कहानियां* और *प्रतिनिधि बाल कहानियां* अभी मेरे सामने हैं। लेकिन विडंबना यह है कि इन संग्रहों की लगभग दो सौ कहानियों में ज्यादातर काल्पनिक और अलौकिक संसार से जुड़ी कहानियां हैं। उनके *श्रेष्ठ बाल कहानियां* संग्रह में 'नकली मिठाई', 'अंधविश्वास', 'मां की स्मृति', 'भटकती आत्मा', 'भूल का अहसास' जैसी कुछ कहानियां आधुनिक परिवेश को छूती तो हैं पर उनका कथा-विन्यास प्रभावित नहीं करता। 'तैराक मोनू' और 'नटखट नहीं है मोनू' अलग-अलग शीर्षकों से *श्रेष्ठ बाल कहानियां* तथा *प्रतिनिधि बाल कहानियां* में संग्रहीत हैं पर असल में वे दो अलग कहानियां न होकर शब्दशः एक ही हैं।

उषा यादव और राजकिशोर सिंह द्वारा संपादित *हिंदी की श्रेष्ठ बाल कहानियां* इस मायने में एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है कि इसमें लगभग साठ नए-पुराने बाल कथाकारों की 61 बाल कहानियां शामिल हैं। लगभग सभी कहानियां स्तरीय हैं और बच्चों की विभिन्न रुचियों को ध्यान में रखकर संकलित की गई हैं। उषा महाजन की 'गलतफहमी', उषा यादव की 'पते की बात', जय प्रकाश भारती की 'मां की अमानत', राज किशोर सिंह की 'नई कहानी', भगवती प्रसाद द्विवेदी की 'जिज्ञासा' आदि अनेक ऐसी कहानियां हैं जो बच्चों को पसंद आनी चाहिए।

मुकेश नादान के *शिक्षाप्रद बाल कहानियां* संग्रह में 27 कहानियां हैं जो नीतिकथाओं जैसी हैं और अंत में कोई न कोई सीख देती हैं। किताब सुरुचिपूर्ण ढंग से दोरंगे चित्रों के साथ छापी गई है। हास्य बाल कथाओं में वीरेंद्र जैन की *हास्य कथा बतीसी* अकेली ऐसी किताब है जो अपनी मनोरंजक कथावस्तु और चुटीली शैली के कारण बच्चों को न केवल पसंद आएगी बल्कि अंदर तक उन्हें गुदगुदाएगी भी। वीरेंद्र जैन एक मंजे हुए कथाकार हैं इसलिए उनकी इस कृति में परिपक्वता तो है ही।

सुरेखा पाणंदीकर के *तीसरी लड़की* बाल कहानी संग्रह की तीनों कहानियां- 'नई लड़की', 'शांति-नई पोती' और 'तीसरी लड़की' तथा उषा यादव की 'सबक', जगजीत सिंह की 'नन्ही शिक्षिका' आधुनिक परिवेश की उत्कृष्ट बाल कहानियां हैं जो बातों ही बातों में बड़ों को भी सीख दे जाती हैं। 'बच्चों में बच्चा' ब्रजभूषण की लंबी बाल कहानी है जो एक छोटे बच्चे के खोने से लेकर उसके वापस मिलने तक कई घटनाओं से भरी है।

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', श्री प्रसाद और हरिकृष्ण देवसरे सिद्धहस्त बाल कथाकार हैं। 'चंद्र' जी के *टिड्डी पुराण* और श्री प्रसाद की *फ्लोरेंस नाइटिंगेल* में छह-छह मनोरंजक बाल कथाएं हैं हालांकि उनकी पृष्ठभूमि अलग-अलग (क्रमशः ऐतिहासिक और सामाजिक) हैं।

देवसरे उन गिने-चुने बाल कथा लेखकों में से हैं जिन्होंने पारंपरिक लीक से हटकर बाल कहानियां लिखी हैं और उन्हें आधुनिक सोच के हिसाब से ढाला है। *खरबूजे ने बदला रंग* उनका नया बाल कहानी संग्रह है जिसमें पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर लिखी गई उनकी चौदह मनोरंजक बाल कहानियां हैं। छोटी-छोटी इन कहानियों को बच्चे पसंद कर सकते हैं।

बाल कहानी की तरह ही बाल कविता का क्षेत्र भी ऐसा है जो बच्चे को अति प्रिय रहा है और जिसमें विपुल साहित्य रचा जा रहा है। इधर कई नए बाल कविता संग्रह मेरी नजर में आए हैं जिनमें शिखरस्थ बाल कवि कन्हैया लाल 'मत्त' का *अब है मेरी बारी* (ईशान प्रकाशन, 17 शिवपुरी, मेरठ; मूल्य : 70 रुपये), राम गोपाल वर्मा का *एक सौ एक बाल गीत*, अभिरंजन कुमार का *मीठी-सी मुस्कान दो*, शेरजंग गर्ग की इक्यावन बाल कविताओं का संग्रह *तीनों बंदर महाधुरंधर* (सभी के प्रकाशक: आत्माराम एंड संस, दिल्ली; मूल्य : क्रमशः 275, 75 एवं 75 रुपये), देवेंद्र कुमार के *इक्यावन बाल गीत* (एम. एन. राय पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली; मूल्य : 75 रुपये), प्रकाश मनु की *इक्यावन बाल कविताएं* (सावित्री प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य 75 रुपये) प्रमुख हैं। पिछले वर्ष इक्यावन बाल गीतों का एक संग्रह (आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 60 रुपये) इन

पंक्तियों के लेखक का भी प्रकाशित हुआ है।

इनके अलावा बाल कविताओं के कई और छोटे लेकिन महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें श्याम सुशील का *होती मैं तितली*, बालस्वरूप राही का *सूरज का रथ*, अश्वघोष के *बाइस्कोप निराला* और *राजा हाथी*, कृष्ण शलभ का *ओ मेरी मछली*, प्रभा किरण जैन का *गीत खिलौने* (प्रकाशक -वैभवशाली तथा मेधा बुक्स, दिल्ली; मूल्य : 25 रुपये), राष्ट्रबंधु का *मेरे प्रिय बाल गीत* (सुमीत पब्लिकेशंस, दिल्ली; मूल्य : 25 रुपये), मोहम्मद फहीम का *हाथी की बारात*, मोहम्मद साजिद खान का *छपछैया* और मोहम्मद अरशद खान का *रेल के डिब्बे* (सभी के प्रकाशक-एन.डब्ल्यू.ए. पब्लिकेशन, फैजाबाद, मूल्य : 8 रुपये), ज्ञानेंद्र मोहन 'ज्ञान' का *राजा जी की शैतानी* (श्री गांधी पुस्तकालय, चौक, शाहजहांपुर; 25 रुपये) और एक बिल्कुल किशोर बाल कवि शिवांक का *बस्ते में चूहा* उल्लेखनीय हैं।

कन्हैयालाल 'मत' हिंदी बाल कविता के उन शिखरस्थ पुरुषों में से हैं जिन्होंने हिंदी बाल कविता को बच्चों के समग्र संसार से जोड़कर एक सर्वथा नया मुहावरा दिया है। लयकारी और शब्द संयोजन की उत्कृष्ट कला में तो वह माहिर हैं ही, साथ ही, बाल मनोविज्ञान के भी वह एक बड़े अध्येता हैं। उनके ताजा बाल गीत संग्रह *अब है मेरी बारी* में उनकी कुछ श्रेष्ठ बाल कविताएं संकलित हैं। 'सबेरे का गीत' का मुखड़ा देखिए : *कैसी बढ़िया धूप खिली, टिलिल- टिलिल टिल टिलिलिलली* और 'निम्मी का परिवार' जिसमें एक बड़े परिवार के सदस्यों के रूप में पशु-पक्षियों को अलग-अलग काम बांटे गए हैं : *निम्मी का परिवार निराला/ कभी न होता गड़बड़झाला*। 'चुहिया रानी' भी उनकी इसी मिजाज की मजेदार कविता है। और 'चल भई काके' का तो जवाब नहीं : *उल्टे-सीधे बना न खाके/ खेल जमाएं, चल भई काके! एक फिरंगी, तीन तिलंगे / पहन मुंडासे रंग-बिरंगे/ बोलें खुलकर हर-हर गंगे / गूंजें नभ में हंसी-ठहाके।*

'मत' जी की यह विशेषता है कि वह अपनी बाल कविताओं में घुइयां, टुइयां जैसे देशज शब्दों का खुलकर इस्तेमाल करते हैं और उनमें एक जानी-पहचानी ध्वन्यात्मकता पैदा करते हैं। उनकी कुछ और चटपटी कविताओं में 'हाथी दादा' और 'दो कबूतर', जो कथा गीत हैं– के नाम लिए जा सकते हैं।

रामगोपाल वर्मा ने बाल कहानियां, बाल कविताएं, बाल एकांकी बहुतायत में लिखे हैं और उनका 101 बाल गीतों का प्रस्तुत संग्रह भी उपर्युक्त संग्रहों में सबसे बड़ा है। पर थोक में लिखे गए ये बाल गीत– देशभक्ति, साहस, एकता, विनोद जैसे अच्छे विषय होते हुए भी दृष्टि की कमी और छंद की गड़बड़ी के कारण ज्यादा आकर्षित नहीं कर पाते। कुछ में प्रूफ की गलतियां खटकती हैं तो कुछ तत्सम शब्दों से भरे दो-दो, तीन-तीन पृष्ठों के हैं जिन्हें बच्चों की स्मृति में टिकाकर रखना ही अपने आप में एक श्रमसाध्य काम है। बहरहाल, ये बाल गीत शिक्षा संस्थाओं की जरूरतें भले ही पूरी करें, पर बच्चों के मनोविज्ञान की दृष्टि से इनमें अनेक खामियां हैं।

अभिरंजन कुमार अपेक्षाकृत नए बाल गीतकार हैं और उनके *मीठी-सी मुस्कान* दो संग्रह में पैंतालीस बाल कविताएं हैं। इनमें से ज्यादातर बाल कविताओं के विषय ऐसे हैं जिन पर पहले भी बहुत-सी उत्कृष्ट बाल कविताएं लिखी गई हैं। 'परमाणु के मूलकण' अटपटी-सी कविता है और 'सबसे प्यारा है वंसत ऋतु'। कविता में व्याकरण दोष है क्योंकि ऋतु शब्द स्त्रीलिंग है, पुल्लिंग नहीं। कहीं-कहीं वाक्य विन्यास की गड़बड़ियां भी हैं। इसलिए उनका यह संग्रह बड़ी संभावनाएं नहीं जगाता। पर चूंकि उन्हें अभी एक लंबा रास्ता तय करना है इसलिए उनकी कुछ सचमुच अच्छी कविताओं की प्रतीक्षा की जा सकती है।

शेरजंग गर्ग और बालस्वरूप राही परिपक्व बाल रचनाकार हैं और उनकी बाल कविताओं को पढ़ना तक एक तरह से स्वयं को दृष्टिसंपन्न करना है क्योंकि ये दोनों कवि उस वरिष्ठ पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्होंने न केवल बाल कविता को नया रूपविधान दिया है बल्कि अनेक नए रचनाकारों को प्रेरणा भी प्रदान की है।

शेरजंग गर्ग की बाल कविताओं में विषय उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी प्रस्तुति। *तीनों बंदर महाधुरंधर* में संकलित उनकी छोटी-बड़ी सभी तरह की मनोरंजक और प्रेरक बाल कविताओं में से एक-दो अंश देखिए : *डाल काट दी, पत्ते नोचे/ पेड़ काटने वालों ने / पंख कुतर डाले तरुवर के/ आफत के परकालों ने / सिर्फ मधुर व्यवहार मांगते/ फल-फूलों के दानी पेड़/ कैसे सह पाएंगे, बोलो/यह निर्मम नादानी पेड़?* पर्यावरण की चिंता से जुड़ी इस अनूठी बालकविता के बाद पूरे साल का यह गीत : *जनवरी में बोए बीज, फरवरी तक सींचे/ मार्च आते-आते, खिल गए बगीचे/ मार्च में मनाई होली, एप्रिल में एप्रिल फूल, मई में परीक्षा दे दी, जून तक सब गए भूल*। उनकी और यादगार बाल कविताओं में 'देश', 'मात्राओं के गीत', 'उल्लू मियां', 'आजादी', 'खिड़की', 'तीनों बंदर महाधुरंधर' के नाम लिए जा सकते हैं।

बालस्वरूप राही भी बच्चों और बड़ों दोनों के चहेते कवि रहे हैं। *सूरज का रथ* उनकी इक्कीस नई बाल कविताओं का संकलन है। शेरजंग गर्ग की तरह राही जी की बाल कविताओं में भी विषय की अपेक्षा प्रस्तुति का ढंग ज्यादा मायने रखता है। 'बाल वर्ष' कविता में उनकी यह चुटीली शिकायत बच्चों के मन की ही बात कहती है- *नहीं चलेगी धौंस बड़ों की / है यह पूरा साल हमारा। बड़े-बड़े जाते हैं पिक्चर / हमें छोड़ जाते हैं घर पर / चिंता नहीं किसी को इसकी / कहां सिनेमा हाल हमारा।* और 'लालकिला' कविता की यह उठान तो बिल्कुल ताजी है - *ताजमहल है कविता जैसा / लालकिला इतिहास है*।

प्रकाश मनु ने आलोचक के रूप में स्वातंत्र्योत्तर काल की हिंदी बाल कविता के एक पूरे दौर को जिया है, उसकी विस्तृत समीक्षा भी की है, पर उनकी अपनी बाल कविताओं की ओर लोगों का ध्यान लगभग न के बराबर गया है। उनकी 51 बाल कविताओं का सद्य: प्रकाशित संग्रह नई बालकविता के अनेक आयामों को उद्घाटित करता है। मिसाल के तौर पर देखें तो गिलहरी पर अनेक बाल कविताएं लिखी गई हैं पर इतने कम शब्दों में इतनी चुस्त-दुरुस्त बाल कविता सिर्फ प्रकाश मनु की ही है- *एक गिलहरी/ नेक गिलहरी/ बैठी घुटने टेक गिलहरी /धारीदार पहने कोट/ कुट-कुट-कुट खाती अखरोट / नाच री कठपुतली–* की ध्वन्यात्मकता भी अनूठी है : *कठपुतली! ओ कठपुतली! नाच, नाच री कठपुतली! फर-फर-फर/ परियों की रानी/नभ से उतरी/कथा पुरानी / राजा-रानी/आना-कानी/जरा बता दे/राम कहानी। घूम-घूमकर, झूम-झूमकर/खेल दिखा री कठपुतली*!

फूल फुलकिया / अम्मा मेरी खूब फुलाओ जैसी मीठी कविता रचने वाले देवेंद्र कुमार अपनी कहानियों की तरह बाल कविताओं में भी नए प्रयोग करने से नहीं चूकते और अपनी बाल कविताओं में वह समाज के ऐसे वर्ग के साथ अपनी प्रतिबद्धता स्थापित करते हैं जिसे आमतौर पर नजरअंदाज किया जाता है, चाहे वह गुब्बारे बेचने वाली गरीब लड़की हो या झाड़ू लगाने वाली सड़कों की महारानी। 'गर्म सड़क पर नंगे पांव क्यों चलते हैं लोग?' बाल कविता उनकी इस प्रतिबद्धता को दर्शाती है। पर ऐसा नहीं है कि उनके *इक्यावन बाल गीत* संग्रह में इससे अलग रंग की कविताएं हैं ही नहीं। थोड़े-से अपवादों को, जहां उनके बाल गीतों में कुछ अधूरापन-सा दिखता है, छोड़ दें तो उनके *बड़-बड़-बड़-बड़ करें पड़ोसिन,*

मम्मी जी हैरान हैं और *आसमान को हरा बना दें / धरती नीली, पेड़ बैंगनी / गाड़ी ऊपर, नीचे लाला / फिर क्या होगा गड़बड़झाला* जैसे बाल गीत किसी भी बच्चे के मन में गुदगुदी पैदा कर सकते हैं।

नए प्रयोगशील बाल कवियों में श्याम सुशील ने इधर अपनी अलग पहचान बनाई है। *होती मैं भी चंचल तितली* उनका पहला बाल कविता संग्रह है जिसमें बाल मन की विविध छवियों को साकार करती उनकी ताजा कविताएं हैं। *चोट मुझे लगती है मम्मी / तुमको क्यों होता है दुख? / अच्छे नंबर जब लाता हूं / पापा क्यों हो जाते खुश?* और *पापा, इतना भारी बस्ता क्यों होता है*, जैसी कविताओं में वह अगर बच्चे की सहज जिज्ञासा को शब्द देते हैं तो 'घाऊं-माऊं' जैसे खेल गीत के जरिए बच्चों को एक नई दुनिया में ले जाते हैं। यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि बच्चों के लिए खेलगीत रचने की परंपरा अब लगभग समाप्त हो गई है और श्याम सुशील का यह बालगीत इस दिशा में एक शुभ संकेत है।

अश्वघोष के दो बालगीत संग्रहों– *राजा हाथी* और *बाइस्कोप निराला* में उनकी कुछ अच्छी कविताएं देखी जा सकती हैं। यथा– *कानाबाती कुर्र। चिड़िया उड़ गई फुर्र / चिड़िया पहुंची दिल्ली / वहां मिली एक बिल्ली/बिल्ली बोली घुर्र/कानाबाती कुर्र।* इसके अलावा 'बागड़ बिल्ला', 'जुगनू भाई', 'देशी फूल' उनकी चुलबुली कविताओं में गिनी जा सकती हैं।

अश्वघोष की समांतर पंक्ति में खड़े कृष्ण शलभ ने भी नए ढंग की बाल कविताएं लिखी हैं। अपने बाल कविता संग्रह *ओ मेरी मछली* में वह कविता के जरिए किस्सागोई करते नजर आते हैं : *छुटका राजा, बड़की रानी / लाल चिरैया पिंजरा धानी/ बोलो बच्चो, तुम्हें सुनाऊं / इनकी या फिर और कहानी।*

गीत खिलौने प्रभाकिरण जैन का पुरस्कृत बाल कविता संग्रह है जिसमें शिशुगीतों जैसी आठ-दस पंक्तियों की उनकी छोटी-छोटी बाल कविताएं हैं पर इनमें वह बात नहीं जो उनकी कोई विशिष्ट पहचान बन सके।

राष्ट्रबंधु वरिष्ठ लेखकों में से एक हैं और उन्होंने न केवल बाल साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा है बल्कि नए रचनाकारों की एक पूरी पीढ़ी को प्रेरित किया है। *मेरे प्रिय बालगीत* में उनकी कुछ अपनी चहेती कविताएं हैं जो बच्चों को भी पसंद आ सकती हैं।

मोहम्मद अरशद खान, मोहम्मद फहीम और मोहम्मद साजिद खान हिंदी बाल कविता के युवा हस्ताक्षर हैं। *रेल के डिब्बे में, हाथी की बारात* और *छपछपैया* उनके पहले बाल कविता संग्रह हैं। हालांकि इनमें सभी चुस्त कविताएं नहीं हैं पर अच्छी कविताओं में मोहम्मद अरशद की *बहुत खेल ली मिट्टी-धूल / मुन्ना अब जाओ स्कूल*, मोहम्मद फहीम की *भूरी-भूरी कुछ है मैली / मुन्नू की है प्यारी थैली / कंचे उसमें भरे पड़े हैं / कुछ नीले, कुछ हरे पड़े हैं* और मोहम्मद साजिद खान की *बस्ता नया-नया दद्दा का / देखो, मेरा है भद्दा-सा/ नया मंगा दो, वरना शाला नहीं जाऊंगी* का उल्लेख किया जा सकता है। ज्ञानेंद्र मोहन 'ज्ञान' के बाल गीत संग्रह *राजा जी की शैतानी* में आम ढंग की कविताएं हैं जो बहुत प्रभावित नहीं करतीं। लेकिन किशोरावस्था की दहलीज पर खड़े बिल्कुल नए कवि शिवांक की बाल कविताओं में अनेक संभावनाएं नजर आती हैं। *बस्ते पर चूहा* में उनकी कुछ मजेदार कविताएं हैं। हस्तलिपि में प्रकाशित इन कविताओं में छंदों का बंधन नहीं है पर चकित करने वाली बाल मन की अभिव्यक्ति हर जगह मौजूद है : *मेरे बस्ते पर चूहा/नाच रहा था तुम्मक-तुम्मक/ मैंने शोर मचाया/ भाग गया चूहा तुम्मक-तुम्मक* !

बच्चों में सामूहिक खेल भावना एवं उनकी रचनात्मक प्रतिभा को विकसित करने में नाटकों, पहेलियों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। बाल एकांकियों की इधर तीन किताबें प्रकाशित हुई हैं– बानो सरताज की *सच्चाई की कहानी* और *एक से बढ़कर एक* (वैभवशाली प्रकाशन, नवीन शाहदरा, मूल्य : 25 रुपये) तथा शुभा सक्सेना की *इक्कीसवीं सदी का राक्षस : प्लास्टिक* (प्रखर प्रकाशन, दिल्ली-32; मूल्य : 15 रुपये)। इनमें संकलित लगभग दस एकांकी बच्चों को रंगमंच से जुड़ने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। पहेलियों पर मुकेश नादान एवं निरुपमा की *ज्ञान पहेलियां* (एम.एन राय पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली; मूल्य : 125 रुपये) जिसमें पांच सौ से अधिक पहेलियां और उनके उत्तर हैं तथा मुकेश नादान की ही *पक्षियों का रोचक संसार* (आत्माराम एंड संस, दिल्ली; मूल्य : 80 रुपये) बाल साहित्य की कुछ और उल्लेखनीय कृतियां हैं, जो ज्ञानवर्द्धक होने के कारण बच्चों को पसंद आएंगी। □

बाल पत्रकारिता : सवाल सही सोच का

पृष्ठ 33 से आगे

ध्यान में रखते हुए दुनिया की ताजा समस्याओं और घटनाओं पर लेख भी होते थे। और आधे से अधिक हिस्से में उनकी सक्रिय भागीदारी होती थी। बच्चे ही अपने आस-पास के समाचार लिखकर भेजते थे। उन्हीं की कहानियां, लेख, कविताएं, बनाए हुए चित्र, उन्हीं के द्वारा लिया गया इंटरव्यू, किसी समस्या पर उनके विचार, प्रतिभावान बच्चों के बारे में देश-दुनिया की रोचक जानकारी, विज्ञान के समाचार, खेल-कूद, विचार-विमर्श आदि। इसके अलावा बीच-बीच में उस पत्र से जुड़े लोग बच्चों के बीच जाकर बातें करते, कुछ रचनात्मक गतिविधियां कराते। इस तरह वह पत्र न सिर्फ बच्चों की आज की जरूरतों को ध्यान में रखकर निकाला गया एक मुकम्मल बाल साप्ताहिक था बल्कि सक्रिय रूप से बच्चों के साथ जुड़ा भी हुआ था। यही कारण है कि एक साल के भीतर ही उसकी प्रसार संख्या तीस हजार से ऊपर हो गई थी। उस पत्र का प्रसार केवल राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली तक सीमित था, जोकि अंग्रेजियत के लिए मशहूर है। यह पत्र देश के बाकी हिंदीभाषी राज्यों में भी पहुंचता तो संभवत: सही मायनों में एक मिसाल कायम कर सकता था, लेकिन एक साल पूरा होते न होते यह पत्र बंद हो गया। सुनने में आया कि इसके बंद होने पर कई सरकारी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों ने इसका काफी विरोध किया था, लेकिन यह पत्र फिर शुरू न हो सका।

आज बच्चों के लिए हिंदी में ऐसे साप्ताहिक पत्रों अथवा पाक्षिक पत्रिकाओं की बहुत आवश्यकता है। हिंदी-भाषी क्षेत्रों के बच्चों के लिए आज कोई मंच नहीं है। अंग्रेजी में तो काफी अच्छी पत्रिकाएं हैं, साप्ताहिक पत्र हैं, लेकिन हिंदी के बच्चे जब आज की बदलती दुनिया में अपने लिए इस तरह की किसी पत्रिका, अखबार या मंच की तलाश में निकलते हैं तो उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ता है।

आज प्रसार की दृष्टि से हिंदी के पाठकों को कमजोर और निष्क्रिय कहकर पल्ला झाड़ लेने की बजाय जरूरत है हिंदी की बाल पत्रिकाओं को अपना स्वरूप आज की बदलती दुनिया के अनुरूप बनाने की। सूचनापरक, सहभागिता-आधारित और प्रतियोगिता युग में शिक्षा की बदलती जरूरतों के मुताबिक अपनी विषयवस्तु निर्धारित करने की। और यह कार्य इन पत्रिकाओं के संपादकों को ही करना होगा। गोष्ठियों में बाल साहित्य की स्थिति और हिंदी के प्रति निष्क्रियता पर बिसूरने की बजाय बच्चों के बीच जाकर उनकी जरूरतों को समझना होगा। यदि कोई पत्रिका ऐसा कर पाती है तो पाठकों की संख्या को लेकर उसे कोई शिकायत नहीं रह जाएगी और हिंदी बाल पत्रकारिता के लिए यह नि:संदेह एक ऐतिहासिक कार्य होगा। □

बड़ों के उपन्यासों में बच्चे

हिंदी उपन्यासकारों ने बाल-पात्रों के जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन तो किया है परंतु समाज के सभी वर्गों के बाल-पात्रों की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में जो बाल-पात्र आए हैं, वे अधिकांशतः मध्य वर्ग के हैं जबकि हमारे समाज में मध्य वर्ग से अधिक शोषित और पीड़ित निम्न वर्ग के बाल-पात्र हैं जिन्हें मध्य-वर्ग के बच्चों की समस्याओं का सामना तो करना ही पड़ता है, साथ ही बचपन में उन्हें युवावस्था का दायित्व भी निभाना पड़ता है। हिंदी उपन्यासों में आए बाल पात्रों की भूमिका की पड़ताल* अमिता तिवारी *द्वारा

भारतीय समाज ही नहीं, विश्व समाज में बच्चों का अपना स्थान है, उनकी अपनी महत्ता है। हिंदी साहित्य के ज्वलंत प्रकाशस्तंभ लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास अपने प्रिय ग्रंथ *रामचरित मानस* का प्रवचन करते समय *वंदहु बाल रूप सोइ रामू* लिखना नहीं भूले हैं। शायद वह राम के बाल रूप से इतना अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने 'मानस' के कांडों का निर्धारण करते समय 'बालकांड' को प्रथम वरीयता प्रदान कर समाज में बालक के महत्व और स्थान को प्रतिष्ठित किया। वास्तव में हम अपनी जीवन प्रक्रिया से बच्चों को निकाल ही नहीं सकते। हमारे जीवन में जितनी भी समस्याएं आती हैं, उन्हें जिस स्तर पर हम महसूस करते हैं, उसी स्तर पर बच्चे भी करते हैं।

हिंदी उपन्यास के प्रारंभ में बाल पात्रों को विशेष महत्व नहीं मिला। प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों में बाल पात्रों की संख्या अन्य पात्रों की अपेक्षा कम है लेकिन फिर भी बाल पात्रों की पूर्ण उपेक्षा नहीं की गई है। इन उपन्यासों में बाल पात्र प्रमुख भूमिका तो नहीं निभाते परंतु उनका उल्लेख किसी न किसी रूप में अवश्य हुआ है। जैसे पं. गौरीदत्त के उपन्यास *देवरानी जेठानी की कहानी* में बाल पात्रों का कोई विशेष चरित्र तो नहीं उभरता परंतु बाल मनोविज्ञान से संबंधित कुछ सूत्र अवश्य मिलते हैं। जैसे श्रद्धा राम फिल्लौसी के उपन्यास *भाग्यवती* में भी बाल मनोविज्ञान का चित्रण है। इस युग के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा बालकृष्ण भट्ट का *नूतन ब्रह्मचारी* ही एक ऐसा उपन्यास है जिसे वास्तविक बाल पात्र प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है। इस उपन्यास में आठ वर्षीय विनायक के चरित्र का पूर्ण चित्रण हुआ है।

प्रेमचंद युगदृष्टा साहित्यकार थे। इसलिए जीवन की अन्य समस्याओं के साथ ही उन्होंने बाल समस्याओं और बाल पात्रों का चित्रण भी अपनी कृतियों में किया है। प्रेमचंद के अनेक उपन्यासों में बाल मनोविज्ञान के साथ ही बाल पात्रों का भी स्वाभाविक चित्रण हुआ है। *सेवा सदन, गबन* के पात्रों के व्यक्तित्व के सूत्र प्रेमचंद जहां उनके बचपन में ढूंढते हैं, वहीं *गोदान* के बाल पात्र सोना और रूपा हमारे समाज के जीते-जागते स्वाभाविक पात्र दिखाई देते हैं।

स्वतंत्रता से पहले के उपन्यास साहित्य में बाल पात्रों का महत्व भले ही रहा हो पर बाल पात्रों का वास्तविक विकास स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में ही मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर युग में बाल पात्र प्रधान उपन्यासों का अभूतपूर्व विकास हुआ है। इस युग में ऐसे उपन्यास अधिक मात्रा में आए हैं जिनमें बाल पात्र या तो प्रमुख भूमिका निभाते हैं या गौण। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में जो बाल पात्र प्रधान उपन्यास मिलते हैं उनमें कृष्ण चंद्र शर्मा 'भिक्खु' का *पूर्वा*, रमेशचंद्र शाह के *गोबर गणेश* तथा *पूर्वापर*, मन्नू भंडारी का *आपका बंटी*, उपेंद्रनाथ अश्क का *चेल*, कृष्ण बलदेव वैद का *उसका बचपन*, भीष्म साहनी का *कड़ियां*, शशिप्रभा शास्त्री का *नावें*, नरेंद्र कोहली का *पुनरारंभ*, मृदुला गर्ग का *वंशज*, मणिका मोहिनी का *पारू ने कहा था*, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का *सूने चौखटे*, गिरिराज किशोर का *ढाई घर*, *तीसरी सत्ता* और भीमसेन त्यागी के *काला गुलाब* का मुख्य स्थान है। इन उपन्यासों के सभी पात्र हमारी तरह समय की विडंबनाओं और विसंगतियों का शिकार ही नहीं, उपज भी हैं। उन्हें भी बड़ों की तरह पीड़ा, संत्रास, भय को अपने स्तर पर झेलना पड़ा है।

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर परिवार का प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। जहां परिवार में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास सही ढंग से हो जाता है, वहीं कुछ परिवारों में रहकर व्यक्ति बुरी तरह टूट जाता है। पारिवारिक विसंगतियों से प्रभावित पात्रों में रमेशचंद्र शाह के उपन्यास *गोबर गणेश* का विनायक और कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास *उसका बचपन* का बीरू है।

छह वर्षीय विनायक भारतीय समाज की मध्यवर्गीय पारिवारिक विडंबना की उपज है। विनायक प्रतिभाशाली बालक है। छह वर्ष की आयु से ही वह कविताएं लिखता है परंतु उसकी यह जन्मजात प्रतिभा परिस्थितियों की आग में झुलस जाती है और वह मात्र ठूंठ बनकर रह जाता है। अनेक विशेषताओं के होने के बावजूद विनायक का व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाता, उसकी प्रतिभा कुंठित हो जाती है जिसका प्रमुख कारण उसकी पारिवारिक परिस्थितियां हैं। माता-पिता उसकी जन्मजात प्रतिभा को प्रोत्साहन नहीं देते। मधुर काका उसे कलेक्टर बनाना चाहते हैं इसलिए उसे साइंस पढ़ने जबर्दस्ती होस्टल भेजते हैं परंतु वह उस क्षेत्र में सफल नहीं होता क्योंकि उसे साइंस में रुचि नहीं है। उसकी प्रतिभा का समुचित उपयोग न होने और अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त न कर पाने के कारण ही उच्च वर्ग के उन बच्चों के बीच विनायक 'मिसफिट' होता है और कलेक्टर बनने की बजाय गोबर गणेश बनकर रह जाता है।

विनायक को 'वीक मैन' उसके माता-पिता और अन्य पारिवारिक परिस्थितियां बनाती हैं। आर्थिक विडंबना को झेलने के कारण मां उसे जगन काका की तरह नेता नहीं बनने देना चाहती। उसके पिता तो स्वयं कुंठित व्यक्तित्व के हैं। मिडिल में फर्स्ट आने के बाद भी वह आत्मनिर्भर नहीं बन पाए। इसी डर से स्वयं संगीत में लीन रहते हुए भी उसे हारमोनियम तक को हाथ नहीं लगाने देते। जिस लक्ष्य तक वह स्वयं नहीं पहुंच सके, उस लक्ष्य तक अपने पुत्र को पहुंचाकर अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करना चाहते हैं। परिवार के सभी सदस्यों द्वारा उसे बड़ा आदमी बनाने की कामना उसकी रुचि को बेदर्दी से रौंद देती है। और वह न तो लेखक ही बन पाता है न ही बड़ा आदमी।

अपने जीवन की इसी विफलता के कारण ही वह मधुर काका से मिलना भी नहीं चाहता क्योंकि उसे इस स्थिति तक पहुंचाने के लिए वही उत्तरदायी हैं। जब पिता कहते हैं– "जाकर उनसे मिल आ" तो वह कहता है– "क्या करूं मैं उनसे मिलकर। ठीक है, भाई तुम्हारा है। मुझे क्या लेना है। तुम्हीं दोनों भाइयों ने तो मिलकर मेरी जिंदगी चौपट की है।" (*गोबर गणेश*, पृ. 322)

कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास *उसका बचपन* भी मध्यवर्गीय विडंबना की कहानी है। बीरू उपन्यास का प्रमुख पात्र है। उपन्यास में माता-पिता, दादी के केंद्र में बीरू की कथा ही प्रमुख रूप से उभरकर सामने आती है। सात वर्षीय बीरू निम्न मध्यवर्ग का पात्र है। संयुक्त परिवार की विसंगतियों के परिणामस्वरूप उसके बचपन का सहज विकास नहीं हो पाता। मध्यवर्गीय पारिवारिक परिवेश की अराजक और हिंसक स्थितियां बच्चे की मन:स्थिति को किस प्रकार कुंठित कर देती हैं, यही इस उपन्यास में दिखाया गया है।

एक ओर बीरू के बाल मन की सरलता है तो दूसरी ओर बड़े लोगों का हिंसक और क्रूर व्यवहार है। बीरू के मनोजगत पर उसके पारिवारिक परिवेश का जो प्रभाव पड़ता है, उसका चित्रण लेखक ने बड़ी चतुराई के साथ किया है। आर्थिक विसंगति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई अराजक और हिंसक स्थिति बीरू को खोखला बना देती हैं। निरंतर कलह और आर्थिक विषमता को झेलने के कारण बीरू सामान्य बालक नहीं रह पाता, 'वह अपनी उम्र से कहीं अधिक बड़ा दिखाई देता है। बीरू को देखकर ऐसा लगता है जैसे घर की कलह और विषम परिस्थितियों ने उससे उसका बचपन छीन लिया हो, उसे असमय प्रौढ़ बना दिया हो। गली के बच्चों को खेलता हुआ देखकर वह उनके साथ मिलकर खेलता 'बल्कि वह एक ओर खड़ा होकर बच्चों की ओर यूं देखने लगता है जैसे वह उनसे बहुत बड़ा हो, जैसे कोई प्रौढ़ चलते-चलते कुछ देर के लिए रुक गया हो, यह देखने के लिए कि बच्चे कैसे खेलते हैं? जैसे वह उनका मुकाबला अपने आप से कर रहा हो, जैसे वह उनसे पूछ रहा हो तुम कैसे खेलते हो?' (*उसका बचपन*, पृ. 23)

बीरू को उम्र से पहले बड़ा बनाने में अभिभावकों का महत्वपूर्ण योगदान है। पिता पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाते नहीं हैं। मां, पिता और दादी से निरंतर लड़ती रहती है। परिवार में किसी व्यक्ति से उसे सुख नहीं मिलता। इसलिए वह बीरू से सुख की आकांक्षा करती है– "बेटा तू बड़ा होकर मुझे सुख देगा न मेरी बात मानेगा न? और तो किसी ने मुझे कभी सुख नहीं दिया।" (पृ. 60) और बीरू कहता है– "हां मां मैं तुझे सुख दूंगा।" (पृ. 60)

मां को सुख देने की भावना ही बीरू को प्रौढ़ बना देती है। उसमें उत्तरदायित्व निभाने की क्षमता उत्पन्न कर देती है। वह छोटी-सी उम्र में ही समझदार बन जाता है। उसका बचपन खिलने से पहले ही मुरझा जाता है। बीरू का व्यक्तित्व किसी भी दिशा में विकसित हो सकता था। वह बीरू, जो बड़ा आदमी बन सकता था, गीली लकड़ियों के धुएं और मां, दादी और पिता की कलह में घुटकर रह जाता है।

बच्चों के व्यक्तित्व के विकास पर माता-पिता और शिक्षकों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। बच्चे अत्यधिक लाड़-प्यार से तो बिगड़ते ही हैं, परंतु माता-पिता का उपेक्षापूर्ण व्यवहार उन्हें समस्याग्रस्त बालक बना देता है। बच्चों को माता-पिता से स्नेह की अपेक्षा रहती है और जब उन्हें यह महसूस होता है कि उनके साथ अनिच्छित बालक-सा व्यवहार किया जा रहा है तो वे जीवन में निराश और मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाते हैं। यदि माता-पिता बच्चों की उपेक्षा करते हैं या उन्हें अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं, छोटी-छोटी बातों पर उन्हें मारते हैं तो बच्चों के मन में भी उनके प्रति प्रेम की भावना नहीं रह जाती। बच्चा माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने लगता है। सच्चाई को छिपाता है। यही नहीं, वह उनसे घृणा भी करने लगता है। मृदुला गर्ग के उपन्यास *वंशज* का सुधीर, *अनित्य* या *सुधांशु*, उपेंद्रनाथ अश्क के उपन्यास *चेतन* का चेतन, कृष्णा सोबती के *सूरजमुखी अंधेरे के* की रत्ती आदि ऐसे ही पात्र हैं।

मृदुला गर्ग के उपन्यास *वंशज* का आठ वर्षीय सुधीर उपन्यास का प्रमुख पात्र है। सुधीर सेशन कोर्ट के जज शुक्ला साहब का बेटा है। मां की मृत्यु तथा पिता की कठोर अनुशासन की प्रवृत्ति उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधक बनती है। मां के प्यार से वंचित होने के साथ ही वह पिता के स्नेह से भी वंचित रह जाता है। स्नेह के इस अभाव के कारण ही वह एक समस्याग्रस्त बालक बन जाता है।

सुधीर बचपन से ही समस्याग्रस्त बालक नहीं है। जज साहब का उपेक्षित व्यवहार और प्रवृत्तियां ही उसे समस्याग्रस्त बालक बनाती हैं। प्रारंभ से ही पिता का कठोर अनुशासन, स्नेह का अभाव और उसे गलत समझने की प्रवृत्ति उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा डालती है। ज्यादा लाड़-प्यार से बच्चे बिगड़ जाते हैं, सुधीर लड़का है, लड़कों पर अनुशासन रखना चाहिए आदि धारणाओं के कारण जज साहब सुधीर को कभी समझने का प्रयत्न ही नहीं करते। उसके किसी कार्य से संतुष्ट नहीं होते, उसकी प्रशंसा नहीं करते। उसके हर कार्य में मीन-मेख निकालकर उसे अपमानित करते हैं। जज साहब सुधीर को पुत्र की तरह नहीं समझते, बल्कि अपराधी की तरह सजा देते हैं, फैसला सुनाते हैं। परिणामस्वरूप सुधीर भी जज साहब को पिता नहीं समझता; वह उन्हें पिता के रूप में संबोधित न करके 'जज साहब' कहकर संबोधित करता है।

पिता का अनुचित व्यवहार ही सुधीर को समस्याग्रस्त करता है। उसे हर ऐसे व्यक्ति से चिढ़ हो जाती है जो उसमें कमी देखता है। उसके बचपन की यह प्रवृत्ति बड़े होने पर भी नहीं जाती। परिणामस्वरूप सुधीर जीवन के हर क्षेत्र में असफल दिखाई देता है। उसके अंदर से आत्मविश्वास की भावना समाप्त हो जाती है।

राजेंद्र अवस्थी के उपन्यास *अकेली आवाज* का बंटू भी पिता के कठोर अनुशासन के कारण समस्याग्रस्त बालक बनता है। बंटू के व्यक्तित्व में अनुशासनहीनता, जीभ दिखाना, अशिष्ट व्यवहार, झूठ बोलना, बहाना बनाना, विद्रोह आदि जो बाल विसंगतियां दिखाई देती हैं, उसके लिए पूर्ण रूप से उसके कलेक्टर पिता उत्तरदायी हैं।

उपेंद्रनाथ अश्क के उपन्यास *चेतन* का चेतन भी पिता के क्रूर व्यवहार का शिकार है। पिता के क्रूर व्यवहार के कारण ही चेतन और उसका भाई, दुलमुल प्रवृत्ति के पात्र बन जाते हैं। जीवन में उनका कोई स्थायी व्यक्तित्व नहीं बनता। पग-पग पर वे समझौता करते चले जाते हैं, समाज की विसंगतियों से लड़ने की

क्षमता उनमें दिखाई नहीं देती। बचपन में पड़े पिता के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए रामानंद कहता है- ''गूदड़ की तरह पीटने से लड़का गूदड़ ही तो बनेगा- और फिर व्यक्तिगत रुचि-अभिरुचि का भी तो प्रश्न है। मुझे गणित की पुस्तकें अपनी ओर न खींच सकीं। यदि मैं किसी कला-कौशल की ओर ध्यान देता तो कुछ न कुछ बन जाता।''(*चेतन* पृ.106)

आर्थिक परिस्थिति का व्यक्ति के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अर्थ की धुरी पर ही व्यक्ति का जीवन संचालित होता है। बाल मन पर भी गरीबी और अमीरी का गहरा प्रभाव पड़ता है। जब अर्थाभाव के कारण उसकी सामान्य आवश्यकताएं भी पूरी नहीं होती तो वह तिलमिला उठता है। उसके विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है और उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है।

आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित जितने भी पात्र हिंदी उपन्यासों में आए हैं, वे अधिकतर मध्यमवर्ग के हैं। मध्यवर्गीय जीवन की विडंबना यह है कि यह वर्ग उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच पिसता हुआ दिखाई देता है। इस वर्ग का जीवन अधिक संत्रासमय और कुंठित होता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में अनेक ऐसे पात्र हैं जिनका जीवन आर्थिक विषमता के कारण बिखरता है जैसे रमेशचंद्र शाह के उपन्यास *पूर्वापर* का बंसी और कृष्ण चंद्र शर्मा 'भिक्खु' के उपन्यास *सोने का मृग* का जीवन।

कृष्ण चंद्र शर्मा 'भिक्खु' के उपन्यास *सोने का मृग* की कथा भारतीय समाज के मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की कथा है। मध्यवर्गीय विडंबना आम आदमी के जीवन को खोखला बना देती है। भिक्खु ने इस उपन्यास में जहां एक ओर मध्यवर्गीय विडंबना बोध को उजागर किया है वहीं इस तथ्य की स्थापना भी की है कि जब बाल सुलभ कुतूहल, किशोरोचित कल्पना और युवावस्था सहज आकांक्षाओं और प्रश्नों से भर उठता है और उन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं मिल पाते तो व्यक्ति का जीवन बिखर जाता है। सफलता उसके जीवन में मरीचिका बन जाती है। उपन्यास का नायक जीवन इसी मध्यवर्गीय विडंबना बोध का शिकार है। आर्थिक विषमता जीवन की समस्त प्रतिभा बुद्धि को अजगर की तरह निगल जाती है और उसका जीवन ठूंठ बनकर रह जाता है।

रमेशचंद्र शाह के उपन्यास *पूर्वापर* का बंसी भी विषम आर्थिक परिस्थितियों की उपज है। बंसी जन्म से ही वैरागी नहीं था और न वह बनना ही चाहता था परंतु परिवार की विषम आर्थिक परिस्थिति ने उसे वैराग्य की सीमा तक पहुंचा दिया। बंसी को प्रारंभ से धर्म में कोई विशेष रुचि नहीं थी कि वह वैरागी ही बने, कि वह संन्यास धारण करे, परंतु बचपन से ही ऐसे संयोग बनते गए कि वह उसी दिशा की ओर अग्रसर होने लगा। बंसी कहता है- ''मेरा पक्का विश्वास है, जो कुख्यात अपराधी बनते हैं उनकी जड़ में कुछ इस तरह के अनुभव जरूर होते होंगे जैसे मेरे खजाने में जमा हैं। मैं क्रिमिनल नहीं बना, जोगी बन गया, यह दूसरी बात है।'' (*पूर्वापर*, पृ. 59)

वास्तव में बंसी के जीवन की असफलता का पूरा उत्तरदायित्व उसके घर की जर्जर आर्थिक स्थिति पर है। आर्थिक विषमता के कारण ही उसका जीवन बिखरता है। अपने जीवन का मूल्यांकन करते हुए वह कहता है- ''सच पूछा जाए तो मेरा यह आतंकवादी चरित्र भी मेरी परिस्थिति का ही परिणाम था, मेरी जन्मजात प्रवृत्ति का नहीं। यदि मेरे पिता भी बंटू के पिता की तरह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति होते तो मैं भी बंटू की तरह पढ़ाकू निकलता।''(*पूर्वापर*, पृ. 81)

असहज दांपत्य संबंधों की समस्या साठोत्तर भारत की प्रमुख समस्या है। वर्तमान युग में हमारे समाज में दांपत्य संबंधों का टूटना एक आम बात हो गई है। अपने-अपने अहं की पूर्ति के लिए पति-पत्नी सामंजस्यपूर्ण जीवन नहीं बिता पाते। उनके इस अहं का कितना भयंकर अभिशाप बच्चों को झेलना पड़ता है, इस ओर उनका ध्यान नहीं जाता। हिंदी उपन्यासों में अनेक ऐसे पात्र हैं जो माता-पिता के असहज दांपत्य संबंधों के कारण ही समस्याग्रस्त बालक बनते हैं। ऐसे पात्रों में मन्नू भंडारी कृत *आपका बंटी* का बंटी, भीष्म साहनी के उपन्यास *कड़ियां* का पप्पू, गिरिराज किशोर के उपन्यास *तीसरी सत्ता* की शबना आदि प्रमुख हैं।

मन्नू भंडारी के उपन्यास *आपका बंटी* का बंटी सबसे संवेदनशील बालक है। बंटी पर माता-पिता के अहं की टकराहट का प्रभाव है। मां शकुन और पिता अजय के टूटते संबंधों के बीच सेतु बनाता हुआ बंटी अंत में बुरी तरह टूट जाता है। माता-पिता अपने अहंम की संतुष्टि के लिए एक-दूसरे से संबंध तोड़ लेते हैं और अपने जीवन की दिशा भी निर्धारित कर लेते हैं परंतु बंटी के बारे में उन दोनों में से कोई नहीं सोचता। माता-पिता की इसी उपेक्षा के कारण बंटी खंडित व्यक्तित्व का बालक बनता है।

शकुन को लगता है कि वह बंटी के जीवन के सहज विकास के लिए विवाह कर रही है, वह तर्क भी यही देती है। डाक्टर जोशी भी कहते हैं कि बच्चों के साथ खेलेगा तो ठीक रहेगा। लेकिन ऐसा नहीं होता। डाक्टर जोशी के घर जाकर बंटी 'फालतू' बच्चा बनकर रह जाता है। अभि और जीत न तो उसे अपनी मेज पर किताबें रखने देते हैं न कार में खिड़की के पास बैठने देते हैं। वह निश्चय करता है कि जिस मम्मी ने इस घर में लाकर उसे 'फालतू' बनाया है, उस मम्मी को वह भी तंग करेगा। दूसरों के सामने चांटा मारने वाली मम्मी का कहना वह कभी नहीं मानेगा। अभिभावकों की उपेक्षा के कारण ही वह बंटी, जो क्लास में फर्स्ट आता था, फेल हो जाता है। क्लास में टीचर के पूछने पर कुछ नहीं बता पाता। ऐसा वह विद्रोहस्वरूप करता है।

वास्तव में बंटी की स्थिति अत्यंत करुणाजनक है। चार माता-पिता के होते हुए भी वह नितांत अकेला है। उसका अपना कोई नहीं है। आत्मीयता के अभाव में बंटी की समस्त प्रतिभा समाप्त हो जाती है, उसका व्यक्तित्व खंडित हो जाता है। और माता-पिता की जिंदगी से निकलकर वह सबका बंटी बन जाता है।

गिरिराज किशोर का *तीसरी सत्ता* उपन्यास भी दांपत्य संबंधों की असहजता के कारण बच्चों की दुर्दशा का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करता है। शर्मा और डा. शीला के संबंध मधुर नहीं रहते जिसका प्रभाव नौ वर्षीय शबना और छह वर्षीय बिन्नू पर पड़ता है।

हिंदी उपन्यासकारों ने बाल पात्रों के जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन तो किया है परंतु समाज के सभी वर्गों के बाल पात्रों की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में जो बाल पात्र आए हैं, वे अधिकांशत: मध्य वर्ग के हैं जबकि हमारे समाज में मध्य वर्ग से अधिक शोषित और पीड़ित निम्न वर्ग के बाल पात्र हैं जिन्हें मध्यवर्ग के बच्चों की समस्याओं का सामना तो करना ही पड़ता है, साथ ही बचपन में उन्हें युवावस्था का दायित्व भी निभाना पड़ता है। हमारे समाज में कितने ही निम्नवर्गीय बालक ऐसे हैं जो स्कूल नहीं जाते, कूड़ा बीनते हैं या फिर कारखानों में मजदूरी करते हैं। इन बालकों की ओर उपन्यासकारों का ध्यान नहीं गया।

अपनी सीमाओं के साथ भी कृष्ण बलदेव वैद, मन्नू भंडारी, रमेश चंद्र शाह, मृदुला गर्ग आदि ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों में बाल जीवन को किसी न किसी रूप में अवश्य रेखांकित किया है, उनकी समस्याओं को समझा है। विनायक, बीरू, बंटी, शबना, सुधीर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों के जीवंत पात्र हैं। □

दशा, दिशा और संभावनाएं

कुल मिलाकर बाल साहित्य लेखन में कविताओं की दशा अच्छी है। हमारे पास बाल काव्य की जो उपलब्ध परंपरा है, उसे निरंतर नएपन के साथ आगे बढ़ाते रहने की आवश्यकता है। हमारे कवियों को नई सदी की मांग के अनुरूप बाल काव्य रचना होगा। चूंकि मीडिया ने बच्चों की बुद्धिमत्ता को एकदम बढ़ा दिया है, अतः अब वे पुराने ढंग की सीधी-सपाट और उपदेशात्मक बाल कविता परंद नहीं करते हैं। आज का बच्चा चांद पर कविता पढ़ता हुआ, उस पर सूत कातती हुई बुढ़िया की परिकल्पना से सहमत न होकर राकेट द्वारा वहां जाने के अभियान को अधिक परंद करेगा। बाल कविता की प्रगति का आकलन रोहिताश्व अस्थाना द्वारा

बालक के सर्वांगीण विकास में अनौपचारिक शिक्षा के रूप में बाल साहित्य का विशेष योगदान है। बाल साहित्य के सच्चे एवं प्रखर समीक्षक भी बाल पाठक ही होते हैं। बाल साहित्य की अनेक विधाएं हैं यथा- बाल काव्य, बाल कथा, बाल उपन्यास, बाल नाटक, बाल एकांकी, बाल जीवनी, बाल यात्रा, ज्ञान-विज्ञान संबंधी लेख एवं आख्यायिका आदि। इनमें बाल काव्य की लोकप्रियता सर्वाधिक है। अपनी गेयता, लयात्मकता, संगीतात्मकता एवं भाषा की सरलता के कारण बाल कविता बच्चों को सहज रूप में प्रभावित करके उनके मन एवं कंठ में उतर जाती है।

हिंदी साहित्य में बाल कविता की एक विशाल एवं प्राचीन परंपरा विद्यमान है। हिंदी के सर्वप्रथम बाल काव्यकार महाकवि सूरदास हुए जो अपनी अंतर्दृष्टि से वात्सल्य रस का कोना-कोना झांक आए हैं। उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं का जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से निरूपण किया है, वह आज भी हमारे बाल काव्यकारों को लेखन की नई दिशा प्रदान करने में सक्षम है।

तभी से बाल काव्य लेखन की स्फुट परंपरा चल निकली। अनेक रचनाएं तो ऐसी हैं जिनके रचयिताओं का कहीं नाम ही नहीं मिलता। जैसे : *सूख-सूख पट्टी, चंदन घट्टी / बाबा के बाग में झंडा गड़ा / झंडा गया सूख, पट्टी गई सूख।*

इन अलिखित एवं लोक प्रचलित बाल कविताओं से प्रेरणा लेकर बाल साहित्यकारों ने लेखन प्रारंभ किया। आरंभिक प्रयासों में भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी की बाल कविताएं मिलती हैं। इस परंपरा को आगे बढ़ाने में पं. श्रीधर पाठक ने महत्वपूर्ण कड़ी का कार्य किया। उन्होंने बच्चों के प्रिय पशु-पक्षियों पर छोटी-छोटी बाल कविताएं लिखीं।

स्वतंत्रता के पूर्व के बाल रचनाकारों में इन कवियों के अतिरिक्त, कामता प्रसाद गुरु, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, डा. विभु, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, रामनरेश त्रिपाठी, भूपनारायण दीक्षित, श्रीनाथ सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, आरसी प्रसाद सिंह, शंभूनाथ सक्सेना, रमापति शुक्ल आदि का सर्जनात्मक योगदान रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर काल के बाल कवियों में स्वर्ण सहोदर, निरंकार देव सेवक, विष्णुकांत पांडेय, चंद्रपाल सिंह यादव मयंक, राष्ट्रबंधु, रामवचन सिंह आनंद, विनोद चंद्र पांडेय, चिरंजीत, श्रीप्रसाद, धर्मपाल शास्त्री, देवेंद्र दत्त तिवारी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नर्मदा प्रसाद खरे, बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, चक्रधर नलिन, शिक्षार्थी, अशोक एम.ए., सीताराम गुप्त, कृष्णकांत तैलंग, सरस्वती कुमार दीपक, नारायण लाल परमार, हरिकृष्ण देवसरे, सूर्यकुमार पांडेय, शकुंतला सिरोठिया, सरोजनी कुलश्रेष्ठ, जगदीश चंद्र शर्मा, सावित्री परमार, पूरन सरमा, राम निरंजन शर्मा ठिमाऊ, भैरूंलाल गर्ग, तारादत्त निर्विरोध, शंभूनाथ तिवारी आदि का योगदान रहा है।

साठोत्तरी हिंदी बाल काव्यकारों में सुरेंद्र विक्रम, अजय, प्रसून, नागेश पांडेय 'संजय', अजय शर्मा यात्री, उषा यादव, विमला रस्तोगी, धीरेंद्र कुमार यादव, शिवचरण चौहान, श्याम सुंदर श्रीवास्तव कोमल, बालकृष्ण गर्ग, जहीर कुरेशी, राजा चौरसिया, राज नारायण चौधरी, पी. आर. शुक्ल, विभा शुक्ल, रंजना वर्मा, सुलेखा पांडेय आदि की लेखन-यात्रा जारी है!

बच्चों के आयु वर्ग के आधार पर बाल कविताओं के तीन प्रमुख भेद माने गए हैं! ये हैं- शिशु कविता, बाल कविता, किशोर कविता।

शिशु कविता के अंतर्गत तीन से पांच वर्ष तक के बच्चों के लिए लिखी गई चार से आठ पंक्तियों वाली वे कविताएं आती हैं जो नन्हे-मुन्नों के प्रिय विषयों पर सरल भाषा में तुकबंदी, ध्वन्यात्मकता एवं लयात्मकता को आधार बनाकर लिखी जाती हैं। शिशु कविता के प्रचार-प्रसार में *पराग* पत्रिका का विशेष योगदान सदैव स्वीकारा जाएगा।

शिशु कविताओं के दो संकलन तीन-तीन खंडों में हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी द्वारा *नन्ही कविताएं* एवं *रिमझिम* के नाम से संपादन में प्रकाशित किए गए! ये संकलन अपने आप में शिशु कविता के इतिहास को भी रेखांकित करते हैं। इनके अतिरिक्त निरंकार देव सेवक की शिशु कविताओं का एक संग्रह *बिल्ली के गीत* नाम से उपर्युक्त प्रकाशन से प्रकाशित और चर्चित हुआ था। सेवक जी की एक शिशु रचना देखें : *बाबा पढ़ते हैं अखबार / अपनी आंखें करके चार / ऐनक दिखा रही है शान / चढ़ी नाक पर पकड़े कान।*

वास्तव में ये शिशु कविताएं ही हैं, जिन्हें बहुत-से लोग शिशु गीत कहते हैं। कविता और गीत के शिल्प विधान में मौलिक अंतर है। शिशु कविताएं बड़ों द्वारा बच्चों को सुनाकर याद करा दी जाती हैं, क्योंकि उस आयु वर्ग में बच्चे उन्हें पढ़ नहीं सकते। हां, चित्रों को देखकर और पंक्तियों को सुनकर वे उनका भाव अवश्य समझ लेते हैं।

बाल कविताएं वे हैं जो पांच वर्ष से बारह वर्ष तक के बच्चों के मनोविज्ञान, उनकी ग्राह्य क्षमता एवं उनके परिवेश को ध्यान में रखकर लिखी जाती हैं। बाल कविताओं और बाल गीतों के कई संपादित संकलन इधर काफी लोकप्रिय हुए हैं। इनमें नवीन रश्मि द्वारा संपादित *हिंदी के श्रेष्ठ बाल गीत*, हरिकृष्ण देवसरे द्वारा संपादित *हिंदी की सौ बाल कविताएं*, रोहिताश्व अस्थाना द्वारा संपादित *चुने हुए बाल गीत*, अनिल चेतन द्वारा संपादित *हिंदी के सौ बालगीत* प्रमुख हैं।

किशोर कविता के अंतर्गत बारह से सोलह वर्ष की आयु को ध्यान में रखते हुए लिखी गई कविताएं आती हैं। इन कविताओं की भाषा अपेक्षाकृत स्तरीय तथा विषयवस्तु किशोरों की आशाओं, आकांक्षाओं, उमंगों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप और प्रेरक होती है। *किशोर लेखनी* का संपादन देवेंद्र कुमार 'देवेश' करते रहे हैं। किशोर कविता का एक उदाहरण देखें :

तुझको या तेरे नदीश, गिरि वन को नमन करूं मैं
मेरे प्यारे देश! देह या मन को नमन करूं मैं
किसको नमन करूं मैं, भारत, किसको नमन करूं मैं !

विषयवस्तु के आधार पर बाल कविताओं के निम्न भेद हो सकते हैं। इनके अंतर्गत विपुल मात्रा में बाल काव्य सृजन हुआ है। ये हैं- लोरियां, प्रभाती, प्रयाण गीत, खेल-कूद संबंधी गीत, राष्ट्रीय गीत, लोकशैली पर आधारित बाल गीत, ऋतु-पर्व संबंधी गीत, महापुरुषों पर आधारित बालगीत, वैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय विषयों पर आधारित गीत, *विविध बाल गीत* , गीत कथाएं आदि!

माताएं सामान्यत: लोरी गाकर अपने बच्चों को थपकी देते हुए सुलाती हैं। उनमें रात, चांद, परी, नींद आदि का चित्रण होता है। लोरी का नाम आते ही शकुंतला सिरोठिया और सरोजिनी कुलश्रेष्ठ के नाम अनायास ही स्मरण हो आते हैं और लगता है कि माताएं ही सर्वोत्तम लोरियां लिख सकती हैं। ये दोनों ही लोरी लेखन में सिद्ध और प्रसिद्ध हैं। शकुंतला सिरोठिया की लोरियों के संकलन *आ री निंदिया* तथा *सोओ सुख निंदिया* के नाम से छपे हैं। इसी प्रकार सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की लोरियां *आ जा री निंदिया* नामक कृति में संकलित हैं। सरोजिनी जी ने बालकों के लिए ही नहीं, अपितु बालिकाओं के लिए भी समान रूप से लोरियां लिखी हैं।

प्रभातियों की चर्चा आते ही महाकवि सूरदास की *जागिए, ब्रज राज कुंअर पंछी वन बोले* तथा हरिऔध जी की *उठो लाल अब आंखें खोलो* नामक पंक्तियां सहज ही स्मरण हो आती हैं! इधर सरोजिनी कुलश्रेष्ठ का प्रभाती संग्रह *भोर भई अब जागो प्यारे* विशेष चर्चा में रहा है। ये प्रभातियां माताएं बच्चों को जगाने के लिए गाती-गुनगुनाती हैं। इनमें प्रभात का प्राकृतिक वर्णन सहज रूप में मिलता है। सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की कुछ पंक्तियां देखें :

फूलों ने पांखें खोली हैं / तुम भी अपनी आंखें खोलो।
ये धुल गईं ओस के जल से / तुम भी अपनी आंखें धो लो।

प्रयाण गीतों में बच्चों को देश की आन-बान, शान की रक्षा करने के लिए आगे बढ़ने का उद्‌बोधन सन्निहित होता है। एक उदाहरण देखें :

वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो !
सामने पहाड़ हो, सिंह की दहाड़ हो
तुम निडर हटो नहीं, तुम निडर डटो वहीं ! (द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी)

बच्चों में खेलकूद के प्रति रुचि जाग्रत करना तथा इस क्षेत्र में अनुकरणीय व्यक्तित्वों से प्रेरणा दिलाना ही खेल-कूद संबंधी बाल गीतों की रचना का मु उद्देश्य होता है। उदाहरणार्थ :

नन्हे बाल कवि **शिवांक** की तीन बाल कविताएं

एक परी आए

एक परी आए
गरमी को दूर भगाए
परी हमारी दोस्त बन जाए
साथ हमारे खेले
साथ हमारे गाए
एक परी आए
दुनिया की सैर कराए
परी हमें कहानी सुनाए
सबसे अच्छी नींद सुलाए
सबका मन बहलाए
एक परी आए
होमवर्क कर जाए!

फुर्र चिड़िया फुर्र

फुर्र चिड़िया फुर्र
दाना खा के फुर्र
पानी पी के फुर्र
गाना गा के फुर्र !

चांदनी रात

रात होती है
तो चांद निकलता है
चांदनी रात में
हम खेल भी सकते हैं
जब हमारी लाइट जाती है
तभी तो चांदनी रात आती है!

चलो अखाड़े, पेलो दंड / बनना तुमको बज्र प्रचंड। (राष्ट्रबंधु)

बच्चों में राष्ट्रीय भावना भरना तथा उन्हें सच्चा देशभक्त बनकर देश की रक्षा के लिए हंसते-हंसते अपने को बलिदान करने के लिए प्रेरित करना आज की अनिवार्यता बन गया है। बाल साहित्यकारों ने इस दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है :

जननी की जय-जय बोलेंगे / अपनी ताकत को तोलेंगे।
हम धीर-वीर कहलाएंगे / भारत की ध्वजा उड़ाएंगे।।

(सोहन लाल द्विवेदी)

लोक शैली पर आधारित रचनाएं राष्ट्रबंधु व श्रीप्रसाद ने विशेष रूप से लिखी हैं। राष्ट्रबंधु की ये पंक्तियां तो बच्चे उनके साथ ही गुनगुना उठते हैं :

रे लो, रे लो / चाई-माई खेलो / परेशानियां झेलो।

ऋतुओं और पर्वों पर भी पर्याप्त संख्या में बाल गीत लिखे गए हैं। होली, दीवाली आदि पर तो प्रति वर्ष बहुत-से बाल गीत लिखे जाते हैं परंतु ईद, क्रिसमस आदि पर बहुत कम बाल गीत लिखे गए हैं।

बापू, नेहरू, शास्त्री, इंदिरा, सुभाष आदि पर बाल काव्य ही नहीं, अपितु बाल खंडकाव्य भी लिखे गए हैं। विनोद चंद्र पांडेय का *जय सुभाष* तथा रोहिताश्व अस्थाना का *जय इंदिरा* उपयोगी बाल खंड हैं।

बच्चों को हंसाने और गुदगुदाने वाली कविताएं भी लिखी गईं, जिनमें राष्ट्रबंधु की *मामा जी* तथा सुंदर लाल अरुणेश की *चांदी का चूहा* शीर्षक रचनाएं चर्चित रही हैं!

आज का युग विज्ञान का युग है। नई सदी विज्ञान की सदी होगी। अत: विज्ञान और पर्यावरण संबंधी बाल गीत भी लिखे गए हैं। विनोद चंद्र पांडेय के संपादन में *बाल कविता* वार्षिक पत्रिका के विज्ञान एवं पर्यावरण विशेषांक इस दिशा में विशेष चर्चित रहे हैं। घमंडीलाल अग्रवाल ने भी अच्छे बाल विज्ञान गीत लिखे हैं।

वर्तमान में नागेश पांडेय 'संजय', श्याम सुंदर श्रीवास्तव कोमल, महेश चंद्र त्रिपाठी आदि अच्छी बाल पहेलियां लिख रहे हैं। अजय शर्मा यात्री की बाल पहेलियों के दो संकलन भी हाल ही में प्रकाशित और चर्चित हुए हैं।

विविध विषयक बाल गीतों के अंतर्गत समस्त बाल परिदृश्य को रचनाकारों ने वाणी दी है। निरंकार देव सेवक, चंद्रपाल सिंह यादव मयंक, विष्णुकांत पांडेय, रामवचन सिंह आनंद आदि ने उत्कृष्ट गीत कथाएं लिखी हैं।

बाल कविता लेखन में शिल्प और शैलीगत प्रयोग भी हुए हैं। सूर्यकुमार पांडेय ने हाइकू शैली में कुछ प्रयोग किए हैं। एक उदाहरण देखें :

बंदर बोला भेड़ से / मामा अगर कहा मुझको / कूद पड़ूंगा पेड़ से।।

मुनिलाल उपाध्याय सरस ने हाइकू से मिलती-जुलती शैली में तीन-तीन पंक्तियों की बाल रचनाएं लिखकर उनका प्रवर्तन 'बाल त्रिशूल' के नाम से किया है। ये बाल त्रिशूल *बाल प्रयाण* नामक संग्रह में छपे हैं। एक उदाहरण देखें :

मेरा बाल त्रिशूल / हंसी-खुशी दे सब बच्चों को / बिछा सुपथ पर फूल।।

बच्चों के लिए कई रचनाकारों ने बाल दोहे भी लिखे हैं। सूर्यकुमार पांडेय व दिनेश रस्तोगी के बाल दोहे काफी चर्चित रहे हैं।

बच्चों के लिए बाल ग़ज़लें लिखने की शुरूआत निरंकार देव सेवक द्वारा की गई। बाद में लाला जगदलपुरी, सरस्वती कुमार दीपक, अजय प्रसून, सुरेंद्र विक्रम आदि ने बच्चों के कार्यकलापों को ग़ज़ल के रूप में प्रस्तुत किया।

उस दिशा में सरस्वती कुमार दीपक की कृति *नन्ही मुन्नी ग़ज़लें* तथा रोहिताश्व अस्थाना की कृति *नन्ही ग़ज़लें* विशेष उल्लेखनीय हैं।

इधर नए प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से बाल कविताएं लिखी जा रही हैं जिनका नयापन बालमन को प्रभावित करता है। नए ढंग से लिखने वालों में हरीश निगम, दामोदर अग्रवाल, दिविक रमेश, जयप्रकाश भारती, सूर्यभानु गुप्त, जहीर कुरेशी आदि के नाम लिए जा सकते हैं। यहां हरीश निगम की 'नई धुन' शीर्षक रचना उद्धरणीय है :

तितली रानी/ बड़ी सयानी / बोली- भौंरे सुन
ओ अज्ञानी/ बड़ी पुरानी / तेरी ये गुनगुन!
कालू राजा/ खा के खाजा/ छेड़ नई-सी धुन।।

कुल मिलाकर बाल साहित्य लेखन में कविताओं की दशा अच्छी है। हमारे पास बाल काव्य की जो उपलब्ध परंपरा है, उसे निरंतर नएपन के साथ आगे बढ़ाते रहने की आवश्यकता है। हमारे कवियों को नई सदी की मांग के अनुरूप बाल काव्य रचना होगा। चूंकि मीडिया ने बच्चों की बुद्धिमत्ता को एकदम बढ़ा दिया है, अत: अब वे पुराने ढंग की सीधी-सपाट और उपदेशात्मक बाल कविता पसंद नहीं करते हैं। आज का बच्चा चांद पर कविता पढ़ता हुआ, उस पर सूत कातती हुई बुढ़िया की परिकल्पना से सहमत न होकर राकेट द्वारा वहां जाने के अभियान को अधिक पसंद करेगा। नई सदी का बाल पाठक यह जानना चाहेगा कि आखिर चूहे, बिल्ली के अत्याचार को कब तक सहेंगे और क्या किसी परिस्थिति में वे बिल्ली के गले में घंटी बांधकर निर्भय हो सकेंगे!

आज की परिस्थिति में बच्चों की मनोभावनाओं को रेखांकित करने वाली बाल कविताएं अधिक पसंद की जाएंगी। इस दृष्टि से सुरेंद्र विक्रम की 'कंप्यूटर भैया', 'पार्क हाथ से निकल गया', 'जेब खर्च अब चार गुना हो' जैसी बाल कविताएं सचमुच सोद्देश्य और सराहनीय बन पड़ी हैं।

बाल कविता लेखन को सही दिशा में ले जाने के लिए जहां बाल साहित्यकार प्रयासरत हैं, वहीं पत्र-पत्रिकाओं को भी रोचक, प्रेरक एवं उपयोगी बाल कविताएं अधिक संख्या में छापनी चाहिए। बाल पत्रिकाओं में श्रेष्ठ व पठनीय बाल काव्यकृतियों का समीक्षात्मक परिचय प्रकाशन वर्ष सहित निरंतर छपना चाहिए ताकि बाल पाठक उन्हें पढ़ने का मन बना सकें।

बाल साहित्यकारों को बच्चों में बच्चा बनकर उनके मानसिक धरातल से सोचकर अपनी भावनाओं को काव्यबद्ध करना होगा। बस्ते का बढ़ता हुआ बोझ, अंतरिक्ष में शहर बसाने और यातायात की कल्पना करना, वैज्ञानिक विषयों पर नए ढंग से सोचना, नई सदी के भारत की कल्पना, पर्यावरण प्रदूषण, शांति अहिंसा का महत्व, राष्ट्रीय भावना आदि विषयों पर बच्चे कविताएं अधिक पसंद करेंगे। आज गांवों में रहने वाले बच्चों के परिवेश तथा बालिकाओं को केंद्र में रखकर बाल कविताएं और बाल गीत लिखने की आवश्यकता है! बाल कविताएं ऐसी हों जिनसे बच्चे स्वयं प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

बाल कविताओं में भाषा की सरलता, तुकबंदी एवं छंद ज्ञान का भी बड़ा महत्व है। बाल कविता में यदि किंचित भी छंद दोष होगा, तो लय टूट जाएगी और बच्चा उसे धाराप्रवाह न तो गुनगुना सकेगा और न ही कंठस्थ कर सकेगा।

बहुत-से लोग बाल कविता और बाल गीत में शैल्पिक अंतर नहीं कर पाते। सफल बाल काव्य लेखन के लिए तत्संबंधी साहित्य का निरंतर अध्ययन और मनन की आवश्यक है।

सारांशत: हिंदी में बाल काव्य लेखन की समृद्ध परंपरा विद्यमान है। हिंदी में बाल कविता के लिए समीक्षात्मक मानदंड भी शोध अधिकारियों ने स्थापित किए हैं। हमारे बाल साहित्यकार भी सजग होकर सृजन में समृद्ध हैं। प्रतिभासंपन्न बच्चों को भी बाल कविता लेखन के प्रति आकर्षित किया जाना चाहिए। नई सदी में जाते हुए नि:संदेह आज बाल कविता लेखन की नई दिशाएं खुल रही हैं। बाल कविता की यह अजस्र धारा नई दिशाओं में प्रवाहित होकर उपलब्धियों और संभावनाओं के नए-नए तीर्थ तलाश करेगी- ऐसा मेरा मत है। □

बाल कविता

बाल पाठकों के लिए सर्वश्रेष्ठ उपहार

तीनों बंदर महाधुरंधर : शेरजंग गर्ग; आत्माराम एंड एंस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6; पृष्ठ संख्या : 68; मूल्य : 75 रुपये।

हिंदी के बाल साहित्य में अच्छी रचनाओं की कमी लोग प्राय: महसूस करते हैं। यह एक सच्चाई है कि हिंदी में बाल साहित्य के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों में अमूमन गंभीरता नहीं पाई जाती। उनकी अधिकांश रचनाओं में गुणवत्ता की कमी होती है। इसका एक प्रमुख कारण इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की उपेक्षा भी है। इसके बावजूद उचित प्रोत्साहन, पुरस्कार और चर्चा के बिना जो कुछ स्तरीय रचनाकार बाल साहित्य में सक्रिय हैं, उनमें शेरजंग गर्ग अन्यतम हैं। वह दीर्घ समय से बाल लेखन में सक्रिय हैं और बाल गीतों के क्षेत्र में उन्होंने उल्लेखनीय काम किया है। मुक्त छंद के समर्थ कवि होने के बावजूद उन्होंने छंदबद्ध और गेय बाल कविताएं लिखी हैं। इतना ही नहीं, बाल साहित्य के क्षेत्र में काम करने के लिए उन्होंने लोगों को लगातार प्रेरित भी किया है। बच्चों के रचनाकार के रूप में गर्ग जी पुरस्कृत और सम्मानित भी हुए हैं। हाल ही में उनकी इक्यावन चुनी हुई बाल कविताओं का संकलन *तीनों बंदर महा धुरंधर* के नाम से प्रकाशित हुआ है।

गर्ग जी की बाल कविताओं की यह बड़ी खूबी है कि वह बच्चों के मन में उतरकर लिखते हैं। कविता करते हुए वह खुद शिशु हो जाते हैं। वैसी ही कल्पना उनकी रचनाओं में मिलती है, साथ ही चुहल भी। लगता है, जैसे वह बच्चों के साथ शब्दों से खेल रहे हों। यह खिलंदड़ी भाव उनकी लगभग सभी बाल रचनाओं में मिलता है। मजे-मजे से बात कह देना और बातों-बातों में बड़ी बात कह देना उनकी कविताओं की विशेषता है। जैसे कि इन पंक्तियों में देखिए :

जो थोड़ा-सा अक्लमंद है
वह उल्लू सबको पसंद है
या
अगर सफलता मिले देर से
तो निराश मत होना नाहक
बहुत मिलेंगे, सदा मिलेंगे
मित्रो! गुणवत्ता के ग्राहक !
या
जब भी करते काम अनूठे
शीघ्र बड़े बन जाते बच्चे !
या
पहले हम खुद को पहचानें
फिर पहचानें अपना देश
एक दमकता सत्य बनेगा
नहीं रहेगा सपना देश !
या
खुशबू है व्यवहार प्यार का
जिसकी बड़ी जरूरत भाई
इसके कारण सुंदर लगती
कैसी भी हो सूरत भाई !
या
सुंदर है आंखों की खिड़की
एक नहीं, लाखों की खिड़की
रंग आंकती, ढंग आंकती,
हर खिड़की में यही झांकती
...यही देखती नए नजारे
यही देखती सपने सारे
आंखें खोले रखना भाई,
आंखों में हर चीज समाई।

ऐसे और भी तमाम उदाहरण दिए जा सकते हैं, जो संग्रह की इक्यावन कविताओं में सर्वत्र मौजूद हैं।

इस संग्रह में विविध प्रकार की कविताएं हैं। इनमें सीधी-सादी खिलंदड़ी कविताएं भी हैं तो उपदेशात्मक और मूल्यपरक कविताएं भी हैं। 'देश' और 'खुशबू' मूल्यपरक रचनाएं हैं जिनमें प्रेम, भाईचारे और आगे बढ़ने के इरादे पर बल दिया गया है। 'सबके दिल पर नाम लिखा', 'गुणवत्ता', 'कैसे बच्चे', 'पढ़ने भी दो', 'पेड़', 'सुनो ध्यान से', 'तुमको अपना मित्र बना लूं', 'सांप नेवला', 'तीनों बंदर महाधुरंधर' आदि कविताओं में कवि ने बच्चों को जीवन में सफलता के मंत्र बताए हैं। इनमें उपदेश हैं, पर ये उपदेश जैसे नहीं लगते। बच्चों को सजग करने के लिए इनमें दृष्टि मिलती है पर ये नीरस बयान के रूप में नहीं लगते। बच्चे पढ़ेंगे तो इन्हें दोहराते हुए खुद महसूस करेंगे, जैसे :

कई तरह के फल उपजाते
खुशबू वाले फूल खिलाते
लेकिन थोड़ा-सा झुक जाते
सज्जनता के नाते पेड़
फूले नहीं समाते पेड़ !
कड़ी धूप में बनते साया
सारा जीवन सरस बनाया
पेड़ों की है अद्भुत माया
पहले वर्षा लाते पेड़
फिर छतरी बन जाते पेड़ !
या
गलत बात से अगर डरो तो
तुमको अपना मित्र बना लूं
अच्छी तरह बनो-संवरो तो
तुमको अपना मित्र बना लूं !

इस संकलन की अन्य कविताओं में 'तिरंगा', 'हमारा भारत', 'जवाहर', 'आजादी' आदि राष्ट्रप्रेम की कविताएं हैं। इनसे बच्चों के मन में राष्ट्रीय चेतना का बोध होता है। 'फिसड्डी खिलाड़ी', 'होली में', 'जन्मदिन का गीत', 'खुशियों की पिचकारी', 'आंख मिचौली', 'शरारत का मौसम', 'भालू की लीडरी', 'जलेबी बड़ी फरेबी' आदि मजेदार कविताएं हैं। 'उल्लू' और 'बिल्ली' पर दो-दो कविताएं हैं। उल्लू को सलाह दी गई है कि वह अपनी अक्ल की खिड़की न बंद करे और बिल्ली से कहा गया है कि वह चूहे न खाकर दूध-रोटी खाया करे, चूहों से प्यार करे। प्यार पर ही यह सारा संसार टिका हुआ है। 'उल्लू मियां' कविता की पंक्ति *उल्लू चुल्लू भर महान है* में महानता के लिए चुल्लू भर प्रयोग अनोखा है। इस तरह 'मिस्टर जोकर' कविता में भी मुंह धोकर (न) आने के मुहावरे का सारगर्भित प्रयोग है। इस संग्रह की दो कविताएं लंबी हैं- 'यदि पेड़ों पर उगते पैसे' और 'खिड़की'। पहली कविता में रोचक फंतासी है और दूसरी में तरह-तरह की खिड़कियों का चित्रमय वर्णन।

इन सहज और मनोरंजक कविताओं की पुस्तक में प्रस्तुति भी बहुत सुंदर है। कविताओं के साथ बने सभी चित्र बेहद आकर्षक हैं। संग्रह का मुखपृष्ठ भी इसे पढ़ने के लिए मन में ललक जगाने में समर्थ है। इस संग्रह को इतने सुंदर रूप से प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक बधाई के पात्र हैं। कवि और प्रकाशक दोनों ने ही बच्चों को इस पुस्तक के जरिए यादगार उपहार दिया है।

—**अमर गोस्वामी**

भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य का इतिहास

भारतीय बाल साहित्य का इतिहास : जयप्रकाश भारती; प्रकाशक : अखिल भारती, दिल्ली-110 006; पृष्ठ 216; मूल्य : 300 रुपये।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में बाल साहित्य की उपेक्षा का सवाल निरंतर समुपस्थित रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित साहित्येतिहास से लेकर डा. नगेंद्र द्वारा संपादित वृहदाकार इतिहास के अद्यतन संशोधित संस्करण तक में बाल साहित्य के उल्लेख से बचा गया है। एकाध इतिहास ग्रंथों में बाल साहित्य विषयक चलताऊ चर्चाएं अवश्य मिलती हैं, लेकिन प्राय: लेखकों-आलोचकों द्वारा इसे साहित्य की मुख्य धारा से काटकर देखे जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। हालांकि पिछले पचास वर्षों में भारतीय विश्व-विद्यालयों में पांच दर्जन से भी अधिक शोध कार्य इस दिशा में केवल हिंदी में संपन्न किए जा चुके हैं, तथापि यह देखकर आश्चर्य होता है कि बहुभाषा साहित्य के विकास के लिए कार्य करने वाले साहित्य अकादेमी जैसे राष्ट्रीय संस्थान की साहित्येतिहास-माला के अंतर्गत प्रकाशित विभिन्न भारतीय भाषाओं के इतिहास ग्रंथों में बाल साहित्य की उपेक्षा की गई है, जबकि अकादेमी बाल-किशोर साहित्य का प्रकाशन प्रमुखता से करती रही है तथा इसके द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन लिट्रेचर* भाग एक में विभिन्न भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य की परंपरा, इतिहास और विकास पर पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है।

ऐसी स्थिति में चर्चित बाल साहित्यकार और हिंदी की बहुपठित बाल पत्रिका *नंदन* के संपादक जयप्रकाश भारती द्वारा संपादित पुस्तक *भारतीय बाल साहित्य का इतिहास* का प्रकाशन रेगिस्तान में नखलिस्तान मिल जाने का आभास देता है। इसमें तीस लेखकों के आलेखों के माध्यम से उन्नीस भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य के विकास को रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है। सर्वाधिक पांच आलेख हिंदी बाल साहित्य पर केंद्रित हैं, जबकि संस्कृत, पंजाबी और डोगरी भाषा के बाल साहित्य के बारे में दो-दो आलेख हैं।

पुस्तक का नाम *भारतीय बाल साहित्य का इतिहास* रखा गया है, जो विशुद्ध रूप से संपादकीय इतिहास दृष्टि की छौंक का ही नतीजा है, क्योंकि पुस्तक भारतीय बाल साहित्य के विकास और इतिहास की सर्वांगीण प्रस्तुति नहीं बन पाई है। इसका एकमात्र कारण विभिन्न लेखों में समुचित इतिहास दृष्टि का अभाव है। वस्तुत: पुस्तक के अधिकांश लेख संबंधित भाषा के बाल साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने के ईमानदार उद्देश्य से लिखे ही नहीं गए हैं।

पुस्तक के संपादक जयप्रकाश भारती ने अपने संपादकीय आलेख में स्वीकार भी किया है- 'यह बाल साहित्य का इतिहास नहीं, लेखों का संकलन है।...सूर्या संस्थान, नई दिल्ली की ओर से बाल साहित्य पर दो गोष्ठियां हुई थीं। उनमें जो शोध पत्र पढ़े गए, वे इस पुस्तक के लिए आधार बने।'

तथापि संस्कृत (मधुर शास्त्री), पंजाबी (अमरजीत सिंह), उर्दू (शमशेर अहमद खान), मणिपुरी (देवराज), ओड़िया (जगन्नाथ मोहंती), असमिया (इंदिरा गोस्वामी), गुजराती (सरला जगमोहन), सिंधी (हूंदराज बलवाणी), कन्नड़ (सिसु संगमेश), तमिल (एम. शेषन) और कोंकणी (चंद्रलेखा) भाषाओं के बाल साहित्य पर कोष्ठक में उल्लिखित लेखकों द्वारा पर्याप्त जानकारियां उपलब्ध कराने की दिशा में उनके प्रयत्न और श्रम स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। जयप्रकाश भारती ने भी अपनी चिर-परिचित शैली में हिंदी बाल साहित्य के विभिन्न बिंदुओं पर चर्चा करते हुए उसके रचनात्मक विकास की बिखरी कड़ियों को जोड़ना चाहा है।

पुस्तक के तमाम लेखों में प्राय: बाल साहित्य की आवश्यकता, विभिन्न विधाओं के रूप में उसका विकास, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के प्रकाशन के उल्लेख के साथ-साथ महत्वपूर्ण बाल साहित्यकारों की चर्चा की गई है। यही नहीं, उसमें एक ओर जहां बाल साहित्य के प्रकाशन की स्थिति पर विचार करने वाला आनंदभूषण एवं राजेंद्र प्रसाद सिंह द्वारा संयुक्त रूप से लिखित आलेख है तथा आकशवाणी एवं दूरदर्शन पर बाल साहित्य के प्रसारण की स्थिति की पड़ताल करने वाला हरि सिंह पाल के लेख मौजूद हैं, वहीं बृजमोहन गुप्त का आलेख 'लीलावती से छूमंतर तक' बाल विज्ञान साहित्य की परंपरा और विकास से हमारा परिचय कराता है।

पुस्तक का दुखद पक्ष यह है कि बांग्ला, मराठी, तेलुगु जैसी भाषाओं को लेकर उनके बाल साहित्य की जिस समृद्ध परंपरा की दुहाई हिंदी संसार में अक्सर सुनाई पड़ती है, उसका पर्याप्त परिचय प्रदान करने में यह समर्थ नहीं हो पाई है। भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य के विकास के लिए कार्य करने में अग्रणी साहित्य अकादेमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट जैसी संस्थाओं तथा 'बालगीत साहित्य' (निरंकार देव सेवक) जैसे इतिहास ग्रंथ तुल्य आलोचनात्मक पुस्तकों, प्रकाशित शोध प्रबंधों और तुलनात्मक अध्ययनों की महत्वपूर्ण सामग्री का उपयोग करने या संदर्भ देने में भी यह पुस्तक संकोच करती है।

यही नहीं, हिंदी बाल साहित्य को संदर्भित चर्चाएं आश्चर्यजनक रूप से *नंदन*-सिंड्रोम (ग्रंथि) से ग्रस्त नजर आती हैं- जब हम पाते हैं कि (1) उषा यादव का लेख सिर्फ *नंदन* में प्रकाशित इतर भाषाओं की कृतियों की परिचय सूची उपलब्ध कराता हैं, (2) जयपाल तरंग का लेख बाल कविताओं का विकास वृत्त प्रस्तुत करने में सिर्फ *नंदन* में प्रकाशित कविताओं को संदर्भित करता हैं, (3) मधु जगमोहन का आलेख बाल किशोरों की रचनात्मकता पर बात करते हुए 'बालकन जी बारी' नामक संस्था के अलावा सिर्फ *नंदन* की प्रतियोगिताओं का जिक्र करता है- इस संदर्भ में लेखिका 'चकमक' एवं 'समझ झरोखा' (भोपाल) तथा *बाल हंस* (जयपुर) सहित अनेक पत्र-पत्रिकाओं के व्यापक व्यावहारिक योगदान की कोई चर्चा नहीं करती। हद तो तब हो जाती है, (4) जब राष्ट्रबंधु अपने आलेख में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा *नंदन* पर की गई टिप्पणी का बिना संदर्भ उल्लेख करते हैं।

बावजूद इन सबके, इस पुस्तक का प्रकाशन स्वागत योग्य है, क्योंकि तमाम सीमाओं में भी यह पुस्तक भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य की रचनात्मकता और संबंधित अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां एक जिल्द में उपलब्ध कराती है। यहीं इस बात की जरूरत और भी गहराई से रेखांकित होती है कि भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य की क्रमिक विकास यात्रा को चिह्नित करने वाले इतिहास ग्रंथों की रचना और प्रकाशन का दायित्व रचनाधर्मियों का कर्त्तव्य और पाथेय है।

—देवेंद्र कुमार देवेश

आवां की आंच

आवां तथा चित्रा मुद्गल के साक्षात्कार के संबंध में प्राप्त एक महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया

आवां का स्त्री विमर्श

● इलाचंद्र जोशी की जन्मशती पर धनंजय चोपड़ा का लेख थोड़े में बहुत कुछ कह गया है। किंतु लेखक का यह आरोप कि आलोचकों ने जोशी जी को महत्व नहीं दिया, ठीक नहीं है। मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिक कथाकार के प्रवर्तक के रूप में उन्हें इतिहास में सम्मानित स्थान प्राप्त है। बिना उनका विश्लेषण किए इस धारा का विश्लेषण ही पूरा नहीं होता। उनकी रचनाओं पर अनेक शोध कार्य हो चुके हैं। जोशी जी हिंदी साहित्य के इतिहास पुरुष हैं। भले ही परवर्ती साहित्य में उस प्रवृत्ति का विकास नहीं हो सका; किंतु प्रवृत्तियां मरती नहीं हैं। कहानी और उपन्यासों में मनोविश्लेषण तो आज भी हो रहे हैं।

पत्रिका की दूसरी महत्वपूर्ण सामग्री चित्रा मुद्गल पर वरिष्ठ लेखक बलराम की है। 'आवां की आंच' को स्त्री और दलित विमर्श बनाता एक लेख और चित्रा जी से उनकी लंबी बातचीत। इन रचनाओं की अंतर्पाठीय दरारों का विश्लेषण करने पर जो बातें उभरकर आती हैं, उनमें प्रमुख है 'पुरस्कार'। पुरस्कारों से शुरू हुआ यह आलेख पुरस्कार की चर्चा (साक्षात्कार) पर ही खत्म भी होता है। भले ही इसमें अलका सरावगी को अकादमी पुरस्कार मिलने पर खुशी जाहिर की गई है और एक अभिवंचित वर्ग (नारी) को उसका वाजिब हक मिलने पर संतोष व्यक्त किया गया है; किंतु कहीं-न-कहीं *आवां* जैसी रचना और रचनाकारों को पुरस्कार (अकादमी) न मिलने की कसक भी सुनाई पड़ती है। साहित्य जगत के लिए न तो चित्रा मुद्गल ही कोई नया नाम है और न बलराम ही। उन्हें लोग पुरस्कारों से नहीं जानते। लेखकों को जानने का माध्यम उनकी रचना होती है। जैसा कि चित्रा जी खुद मानती हैं, वह पाठकों को दृष्टि में रखकर रचनाएं लिखती हैं। *आवां* भी सामाजिक सरोकारों का पाठकीय उपन्यास है, जो प्रकाशित होते ही चर्चित हो चुका था। अत: *आवां* या चित्रा जी न तो किसी 'नामवर-राजेंद्र' की मोहताज हैं और न पुरस्कारों की ही।

दूसरी बात *आवां* के विमर्श को लेकर है। तो जाहिर है, एक स्त्री होने के नाते चित्रा जी ने स्त्री समस्या को देखा ही नहीं, भोगा भी है। उनका खुद का जीवन विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोह है। अत: नायिका प्रधान इस उपन्यास में भी 'स्त्री विमर्श' अपने नए तेवर और अंदाज में उभरा है। किंतु इस विमर्श की धार उतनी तीखी नहीं है, जितनी मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में है या फिर मृदुला गर्ग या नासिरा शर्मा में। अलका सरावगी और गीतांजलि श्री तो फिर भी नई हैं। फिर अलका के *बाई पास* को किसी विमर्श विशेष के लिए उतना नहीं चुना गया, जितना शिल्प के नएपन और सूक्ष्म कथ्य संयोजन के लिए। अन्यथा समाजशास्त्रीय दृष्टि से केवल महिला रचनाकारों में ही एक से बढ़कर एक रचनाएं हैं।

जहां तक 'दलित विमर्श' की बात है, उपन्यास में 'दलित इश्यू' कोई प्रश्न बनकर नहीं आते। यहां दलित पीड़ा, आक्रोश या मुक्ति जैसी कोई चेतना नहीं उभरती। केवल पात्र या परिस्थितियों की चर्चा विमर्श नहीं होता। अत: यहां दलित विमर्श नहीं है। मूल प्रश्न स्त्री का है, सो उपन्यास में शुरू से अंत तक बना हुआ है। पीड़ा, आक्रोश, आपत्ति और मुक्ति के प्रश्न यहां मौजूद हैं। अत: स्त्री-विमर्श है।

प्रस्तुत उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता महाकाव्यत्व है। यद्यपि आज महाकाव्यात्मक उपन्यासों का जमाना नहीं है फिर भी सदी का अंत होते-होते *काल कथा* (कामतानाथ), *पहला गिरमिटिया* (गिरिराज किशोर) और *आवां* (चित्रा मुद्गल) जैसे तीन-तीन महाकाव्यात्मक उपन्यासों का आना अपने आप में हिंदी कथा साहित्य की रचनात्मक ऊर्जा का परिचायक है।

-हरि नारायण ठाकुर, मुजफ्फरपुर

सहयोगी रचनाकार

प्रकाश मनु : 545 सेक्टर-29, फरीदाबाद-121 008 (हरियाणा)
देवेंद्र कुमार : 58 मीना अपार्टमेंट्स, 78 पटपड़गंज, दिल्ली-110 092
अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन' : 12/6 जहरुलहसन रोड, कटरा, इलाहाबाद-211 002 (उ.प्र.)
दिनेश चमोला : संपादक, 'विकल्प' भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून-248 005
युगल : मोहीउद्दीन नगर (समस्तीपुर) (बिहार)
गुलशन राय मौंगा : द्वारा बराक वैली पब्लिक स्कूल, गांव फकीरटिल्ला, नजदीक आर.ई.सी., सिलचर-788 010 (जिला-कछार) (असम)
हेमंत देवलेकर 'आत्मीय' : 17, राजेंद्र नगर, शास्त्री नगर के पीछे, उज्जैन-456 010 (म.प्र.)
सिद्धेश्वर : अवसर प्रकाशन, पोस्ट बाक्स नं.205, करबिगहिया, पटना-800 01 (बिहार)
विनय कुमार 'विनायक' : द्वारा वरिष्ठ डाक अधीक्षक, सं.प. मंडल, दुमका-814 101
भगवान दास 'ऐजाज' : टी-451, बलजीत नगर, नई दिल्ली-110 008
सूर्यनाथ सिंह : फ्लैट नं. 15, सेक्टर-19, पॉकेट-II, द्वारका, नई दिल्ली-110 045
रमेश तैलंग : ए-369 गणेश नगर II, शकरपुर, दिल्ली-110 092
अनिता तिवारी : बी-1773 शास्त्री नगर, पोस्ट अशोका विहार, दिल्ली-52
रोहिताश्व अस्थाना : निकट-बावन चुंगी, हरदोई-241 001 (उ.प्र.)
अमर गोस्वामी : एफ 12, सेक्टर 12, नोएडा-201 301
देवेंद्र कुमार देवेश : द्वारा साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110 001
मुजफ्फर हुसैन : सी-1/8 पार्क साइट कालोनी, विकोली पश्चिम, मुंबई-400 079

लघुकथा

उदयपुर का लच्छा भील

मुज़फ्फर हुसैन

एक बार उदयपुर के महाराणा फतेह सिंह जंगल में शिकार खेलने के लिए निकल पड़े।

महाराणा शिकार की खोज में इतने बीहड़ में पहुंच गए कि उन्हें रास्ता सुझाई नहीं पड़ा। महाराणा को इतने में एक भील दिखाई पड़ा। महाराणा ने मेवाड़ी बोली में पूछा- "कारे मोटियार, यो गेलो कठे जावे?" (युवक, यह रास्ता कहां जाता है?)

भील समझ गया कि यह तो मेरे मेवाड़ के अन्नदाता हैं। भील ने अभिवादन किया और महाराज को उदयपुर जाने का मार्ग बता दिया।

महाराणा तो चले गए, लेकिन जब भील घर पहुंचा तो परिवार जनों ने देखा कि भील की जुबान बंद हो गई है, वह गूंगा हो गया है। कुछ ही समय में सारे खेड़े में समाचार फैल गया कि लच्छा भील गूंगा हो गया है। अंत में निर्णय हुआ कि गांव की पंचायत बुलाई जाए।

सरपंच महोदय को लगा, लच्छा बोल सकता है, लेकिन न जाने क्यों नहीं बोल रहा है? वह उसे एक तरफ लेकर गए और बोले-

"तू एक बार कह दे कि क्यों नहीं बोल रहा है? फिर चाहे तो जीवन भर मत बोलना।"

लच्छा अब क्रोधित हो गया और आवेश में आकर बोला- "अरे, जिस जुबान ने महाराणा से बात कर ली, वह अब तुम्हारे से बात करेगी?"

नारी विमर्श बनाम मानव कल्याण

● इलाचंद्र जोशी पर सामग्री अच्छी लगी। हिंदी उपन्यास जगत की उस डगर में, जहां प्रेमचंद का आगमन यथार्थोन्मुखी आदर्शवाद से प्रभावित था, उस समय में जोशी जी का आगमन उपन्यास जगत के लिए शुभ संदेश का संकेत था। वैसे तो फ्रायड की मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा का प्रवर्तन बहुत पहले से चला आ रहा था। जोशी जी को इस धारा का प्रवर्तक मानना शायद कुछ ठीक नहीं। लेकिन इतना तो सही है कि जहां प्रेमचंद ने समाज के साथ व्यक्ति के एकीकृत (एडजस्ट) होने के प्रश्न को अधिक महत्व दिया तथा जैनेंद्र एवं अज्ञेय ने व्यक्ति की गुम होती पहचान को उभारकर सामने लाने की कोशिश की वहीं जोशी जी फ्रायड के मनोविश्लेषण में प्रभावित अनुभूति और कल्पना के बल पर, व्यक्ति के मानस में होने वाले संघर्षों तथा उसके अवचेतन एवं उपचेतन मन की गुत्थियों, कुंठाओं, ग्रंथियों को सुलझाने में सफल रहे हैं।

जैनेंद्र और अज्ञेय जहां मनोविज्ञान से प्रभावित हैं वहीं इलाचंद्र जोशी मनोविश्लेषण से। यद्यपि उनका पहला उपन्यास *घृणामयी* सन् 1929 में ही प्रकाशित हो चुका था किंतु *संन्यासी* (1941) के द्वारा उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली। जोशी जी के उपन्यासों में *मुक्ति पथ* पीक प्वाइंट की सूचना देता है। इसके पूर्व के उपन्यास अनेक ग्रंथियों पर आधारित हैं जहां वे मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति एवं छायावादी संस्कारों में उतर नहीं पाते। *संन्यासी* में जहां आत्महीनता की ग्रंथि है तो *प्रेत और छाया* में इडिपस ग्रंथि और *पर्दे की रानी* मानसिक कुंठाओं से ग्रसित है। फ्रायड के कामवासना से प्रभावित इनके सभी पात्र किताबी ढांचों से लिए गए हैं। इसी कारण वे अपने आप को स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं कर पाते।

जोशी जी के उपन्यासों का यदि किसी पर प्रभाव पड़ा है तो वह हैं- उपेंद्रनाथ अश्क। जहां उपन्यासकार बहुत कुछ कहना तो चाहता है पर स्वयं ही कह देता है। उपन्यास के माध्यम से नहीं कहने देता।

'स्त्री और दलित विमर्श' की जमीन पर जांच कर रहे बलराम जी का विचारोत्तेजक लेख बहुत अच्छा लगा। आज स्त्री लेखिकाएं जिस चौहद्दी के मैदान पर खड़ी हैं वह बहुत ही सीमित है। अगर साहित्य पर दृष्टि डालें तो कुछ नामों का टूटता-बनता क्रम दिखाई देता है। हिंदी में नारी स्वतंत्रता की पहली स्पष्ट पक्षधरता कथा लेखिका कमला चौधरी थीं। जिन्होंने सन् 1930 के आसपास सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेकर स्त्रियों को इस क्षेत्र में आने की प्रेरणा दी। तो वहीं सन् 1936 के आसपास हिंदी कहानी, प्रगतिवाद के प्रभाव में परिवर्तन और पक्षधरता का जो स्वर फूटा उनका स्पष्ट असर हेमवती देवी, सव्बरवाल जैसी लेखिकाओं पर दिखाई देता है। स्वातंत्र्योत्तर काल की कथा लेखिकाओं में पहली बार 'स्त्री विमर्श' की साहसिक पहल करने वाली लेखिकाओं में शशिप्रभा शास्त्री, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा में दिखाई देता है।

आज जब समाज में विवाह, प्रेम, मातृत्व, पारिवारिकता आदि के इर्दगिर्द उदारवादी से उदारवादी और सुधारवादी से सुधारवादी पुरुषों ने जो बिंब, रूपक, छवियां, मिथक और मुखौटे स्त्रियों के लिए रचे थे, उन पर प्रश्न उठाने, उन्हें हवा में उछालने, उनकी खिल्ली उड़ाने और उन्हें ध्वस्त करने का जो सिलसिला सन सत्तर के दशक में ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, निरुपमा सेवती, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मृणाल पांडे, अलका सरावगी ने बड़े ही जोरदार एवं निर्भीक ढंग से शुरू किया था, उसके द्वारा वे मर्दवादी तिलिस्म को तोड़कर, आरोपित छवियों को विखंडित करके, गंदे एवं ढोंगी समाज को बेनकाब करके, असंख्य ऊर्जा के साथ, नारी शक्तिपूर्ण चेतना को उजागर करते हुए खुद को प्रकट कर रही हैं।

बलराम जी ने जहां हिंदी आलोचना जगत के पिता कहे जाने वाले रामचंद्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी को स्त्री विमर्श चेतना के मार्ग में रोड़ा बताया, तो वहीं हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उस समय से आज तक वस्तुत: पुरुष लेखक-संपादक ने विभिन्न पत्रिकाओं जैसे- *सरस्वती, प्रभा, प्रताप, अभ्युदय, मर्यादा, सुधा* और *माधुरी* आदि के माध्यम से नारीशक्तिपूर्ण चेतना को कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ाया।

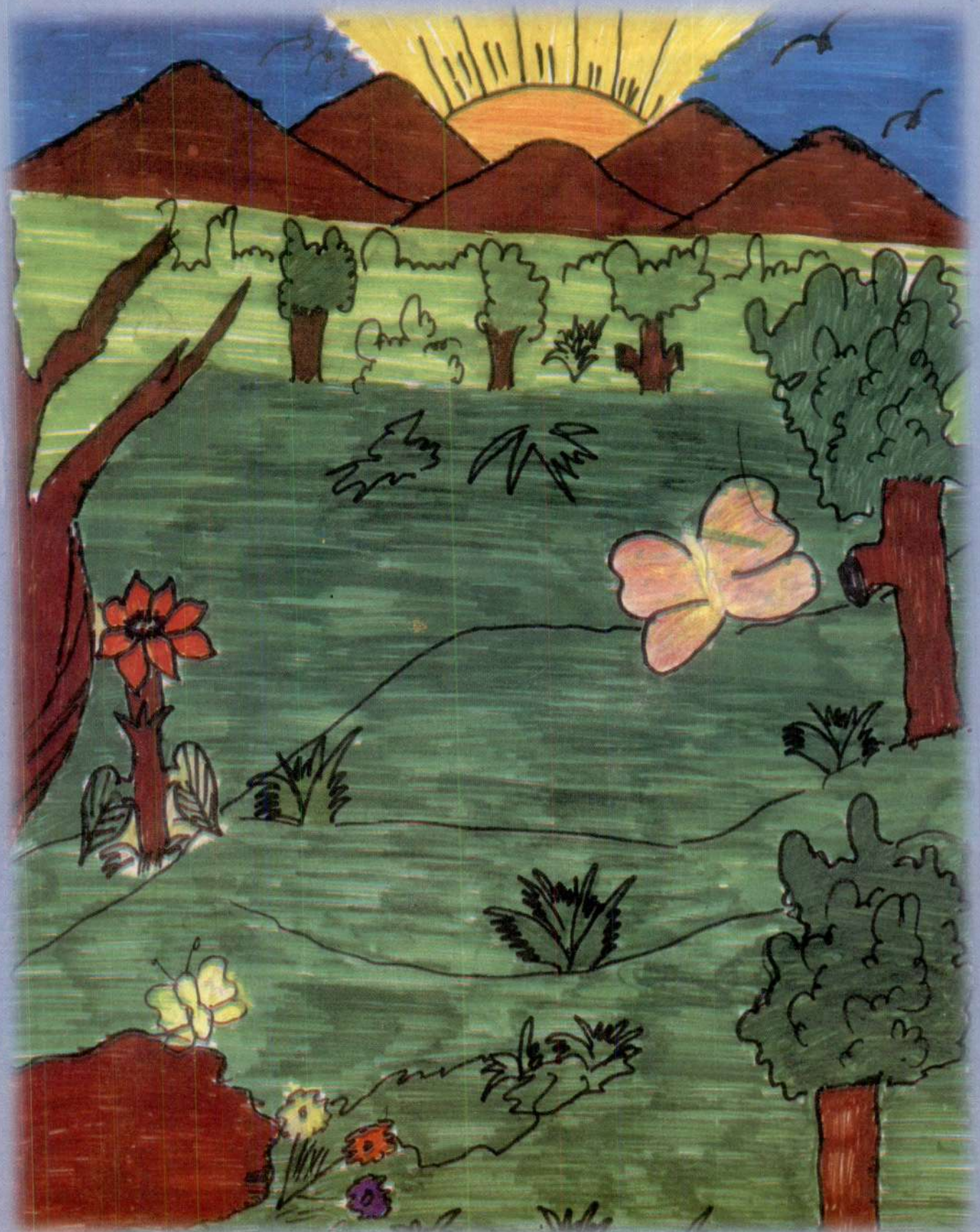
आज हिंदी की अधिकांश लेखिकाएं अपने को दलित की तराजू में तौलकर अपने अस्तित्व को छोटा बना रही हैं। उन्हें नारी विमर्श से ऊपर उठकर विश्व मानव कल्याण के संदर्भ में सोचना चाहिए क्योंकि यह एक कड़वा सच है कि हिंदी के नारी लेखन में न तो कोई आशापूर्णा देवी जैसा नाम है, न ही सत्यवती, सुवर्ण और बकुल जैसी विद्रोहिणी नायिकाएं और न ही उसके सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवेश का वैसा चित्रण। वर्तमान की बात करें तो कहा जा सकता है कि महाश्वेता देवी जैसी एक भी लेखिका नहीं जो 'रुदाली' जैसी कहानियां लिखने के साथ ही अपने समय के राजनीतिक आंदोलनों और आदिवासियों की जिंदगी पर उतने ही अधिकार के साथ लिख सकती हो।

अत: नारी लेखन को विश्व मानव के कल्याण के परिपेक्ष्य में आगे आना चाहिए।

-अखिल मोहन, बलिया (उ.प्र.)


PARAK

डाक तार पंजीयन सं. डी एल/12035/2002 भुगतान के साथ आर.एम.एस दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस प्राप्त
Postal Regn No DL/12035/2002 दिल्ली डाक आर एन 701/57
Licenced to post with payment at RMS Delhi Delhi Postal RN701/57



मोद शरण भटनागर, निदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110 001 से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा आकाशदीप प्रिंटर्स, 20 अंसारी रोड, दरिय
ई दिल्ली-110 002 से मुद्रित। संपादक : बलदेव सिंह मदान